श्री पण्डितमणि-माणिक्क विरचित

अमरसेन चरित्र

मंगलाशीष

श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

शुभाशीष

आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज

प्रकाशक

निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.) दिल्ली

कृति	:	अमरसेन चरित्र
मंगलाशीष	:	श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज
शुभाषीष	:	आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज
संस्करण	:	प्रथम-2017 (1000 प्रतियां)
प्रतियाँ	:	1000
मुद्रक	:	अरिहंत ग्रॉफिक्स मो. 9958819046, 9811021402
प्राप्ति स्थान	:	अतिशय क्षेत्र जम्बूस्वामी तपोस्थली क्षेत्र, बौलखेड़ा, कामां, राज.
	:	अतिशय क्षेत्र जयशांतिसागर निकेतन, मंडौला, गाजियाबाद, उ.प्र.
	:	हिमांशु जैन, फरीदाबाद 9024182930

णाणं पयासाओ

सूर्योदय होने से केवल तमोपुंज का ही अंत नहीं होता अपितु दिव्य प्रकाश का भी उदय होता है। प्रकाश जीवंतता का प्रतीक है, दिवाकर का प्रकाश दिव्यता का द्योतक भी है, उसके माध्यम से प्राणी दिव्यता को प्राप्त करने में समर्थ होता है। प्रकाश को केवल ज्ञान का ही प्रतीक नहीं माना अपितु सुख का कारण भी स्वीकार किया गया है। इसीलिए न्याय ग्रन्थों में इसलिये दीपक को स्वपर प्रकाशी निरूपित करते हुये ज्ञान की महिमा को प्रदिर्शित किया है। जिस प्रकार प्रकाश के बिना अंधकार में जीया गया जीवन अनेक दु:ख क्लेश, अशांति, वैमनस्यता, ईर्ष्या, विद्वेष, चिन्ता आदि विकारों को जन्म देने वाला होता है एवं दुष्कृत्यों का निमित्त कारण बन जाता है, उसी प्रकार चेतना में विद्यमान अंधकार मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम और दु:ख रूप प्रवृत्ति कराने वाला होता है।

बहिर्जगत में विद्यमान तमसावृत्त निशा का निराकरण करने के लिये आदित्य समर्थ होता है। अनेक चंद्रादि ज्योतिर्ग्रह निशा में उदित होकर अपने अस्तित्व का बोध कराते हुये शीतल प्रकाश भी प्रदान करते हैं। चेतना के प्रदेशों पर विद्यमान मिथ्यात्वादि के अंधकार को दूर करने में सूर्यादि अनेक ग्रह भी समर्थ नहीं होते, आत्मप्रदेशों में विद्यमान अंधकार को सम्यक्त्व, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र के तीन रत्न ही तिरोहित करने में समर्थ होते हैं। इन तीन रत्नों की प्राप्ति सर्वज्ञ, वीतरागी, प्राणी मात्र के लिए हितोपदेशी जिनेन्द्र देव के माध्यम से ही संभव है किन्तु वर्तमान में दुखमा नाम का पंचमकाल उदयावस्था को प्राप्त है अत: भरत, ऐरावत क्षेत्र में केवली भगवान का यहाँ सद्भाव नहीं है, उनके अभाव में जिनवाणी भव्य प्राणियों के मिथ्यात्वादि अंधकार को दूर करने में समर्थ है।

आ. पद्मनन्दी स्वामी जी ने पद्मनंदीपंचविंशतिका में लिखा है-

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल किलौ त्रैलोक्यचूड़ामणि-
स्तद्वाचः परमासतेऽत्र भरत क्षेत्रो जगद्योतिका।

सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तेषां समालम्बनं,

तत्पूजा जिनवाचिपूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः॥

वर्तमान में इस कलिकाल में तीन लोक के पूज्य केवली प्रभु इस भरत क्षेत्र में साक्षात् नहीं हैं तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली प्रभु की वाणी मौजूद है तथा उस वाणी से आधारस्तंभ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि भी हैं इसीलिए उन मुनि का पूजन तो सरस्वती का पूजन है तथा सरस्वती का पूजन साक्षात् केवली का पूजन है।

जिनवाणी का संवर्धन, संरक्षण एवं संस्थिति वर्तमान में निर्ग्रंथ साधु आदि चतुर्विध संघ से है। निर्ग्रंथ संत आदि आत्मसाधक जिनवाणी की दिव्य देशना के माध्यम से स्वपर का कल्याण करने में संलग्न हैं। जिनवाणी का प्रचार-प्रसार ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम को ही वृद्धिंगत नहीं करता अपितु मोहनीय कर्म के क्षयोपशम को वृद्धिंगत करने में भी कारण है तथा अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र, असाता वेदनीय एवं अंतराय कर्म के बंधन से बचाने वाला है, आत्मकल्याण के मार्ग में आने वाले विघ्नों को विलुप्त करने वाला है। जिनवाणी के सम्यक् प्रचार-प्रसार असातावेदनीय को सातावेदनीय में, अशुभ नामकर्म को शुभ नामकर्म में, नीचगोत्र को उच्चगोत्र में संक्रमित भी किया जा सकता है। जिनवाणी के अध्ययन-अध्यापन से शुभास्रव, सातिशय पुण्य का बंध, अशुभ का संवर एवं पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

वर्ष 2016-2017 हम परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव के स्वर्ण जयन्ती वर्ष के रूप में अनेक धार्मिक अनुष्ठानों के साथ आयोजित कर रहे हैं। इसी श्रृंखला में आचार्य प्रणीत वर्तमान में अनुपलब्ध बहुपयोगी 50 शास्त्रों का प्रकाशन करने का संकल्प निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति आदि संस्थाओं ने लिया है। उसी क्रम में प्रस्तुत ग्रंथ 'अमरसेन चरित्र' आपके श्री करकमलों में स्वपर हित की मंगल भावना से समर्पित है।

हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से स्व-पर कल्याण की भावना को वृद्धिंगत करते हुए जिनशासन

की प्रभावना में भी निमित्त बनेंगे। सुधी पाठकों से सविनय अनुरोध है कि वे प्रस्तुत ग्रंथ से स्वकीय पात्रता के अनुसार आत्मा को पवित्र करने वाली सतत प्रवाही श्रुत गंगा से श्रुतामृत को ग्रहण कर उसका सदुपयोग ही करें। हंसवत् क्षीरग्राही दृष्टि बनाकर गुणों को ही ग्रहण करें, दोषों का परिमार्जन करने में तत्पर हों। प्रमादवश, अज्ञानतावश हुयी त्रुटियों को या चूक को मूल या चूक समझकर ही विसर्जित कर दें। आप जैसे सुधी पाठक इस ग्रंथ रूपी दधिका में उतरकर नवनीत को ही ग्रहण करें क्योंकि कोई भी ग्वाल या गोपी छाछ ग्रहण करने के उद्देश्य से दधि मंथन नहीं करती। अतः आप भी तदैव प्रवृत्ति करें।

मैं अंतस् की समग्र निष्ठा, भक्ति, समर्पण के साथ सर्वज्ञ देव, श्रुत सिंधु एवं निर्ग्रंथ गुरुओं के चरणों मे अनंतशः प्रणाम निवेदित करता हूँ तथा परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव के पद कमलों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमन करता हुआ उनके स्वस्थ संयमी जीवन की एवं आत्म ध्यान के संवर्द्धन की भावना करता हूँ।

जिन श्रुताम्बुज चंचरीक

- मुनि प्रज्ञानंद

भूमिका

–आचार्य वसुनन्दी मुनि

प्रस्तुत ग्रंथ प्रथमानुयोग का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, इसकी मूलभाषा अपभ्रंश है, इस ग्रंथ में कविवर माणिक्क राज जी ने अमरसेन के चरित्र को निमित्त बनाकर जिनभक्ति, आहारदान एवं व्रत, उपवास इत्यादि कर्त्तव्यों के प्रति श्रावकों को प्रेरित किया है। श्री शुभ मिती चैत्र सुदी पंचमी शनिवार कृत्तिका नक्षत्र के उदय में विक्रम संवत 1576 में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। इस ग्रंथ की रचना पं. माणिक्क राज जी ने रूहियास (रोहतक) नगर के पार्श्वनाथ जिनालय में रूहियासपुर के निवासी अग्रवाल चौधरी देवराज के विशेष आग्रह/निवेदन पर की।

कवि माणिक्क राज श्रीमान् पं. सूरादेव व श्रीमति दीक्षा के सुयोग्य, होनहार व विद्वान पुत्र थे, इन्होंने जैसवाल जैन जाति का अपने ज्ञान प्रकाश से एवं श्रावकोचित व्रतों का पालन कर समुज्ज्वल किया था। आप अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रतधारी थे। आपके गुरु मुनि पद्मनन्दी थे, आपके गुरु भाई मुनि देवनन्दी थे। आप ग्रह त्यागी प्रतिमा धारी श्रावक थे, मन्दिर में एक और ब्रह्मचारी के साथ निवास करते थे। मुख्य प्रथम रूप से आपकी दो रचनायें ही वर्तमान काल में दृष्टिगोचर होती हैं। जिसमें प्रथम है नागसेन चरित्र और द्वितीय है अमरसेन चरित्र।

आपने अमरसेन चरित्र में सात सन्धियों में एक सौ चौदह कवड़क तथा एक हजार सात सौ इकतालीस यमक पदों के द्वारा रुचिकर अपभ्रंश भाषा में अनुपम रचना की है। आपने सन्धियों के आरम्भ में ध्रुवक व अंत में धत्ता छन्द को लिया है। इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद डॉ. श्री कस्तूर चंद जैन सुमन ने किया था। इस ग्रंथ

का प्रकाशन पूर्व में भी हो चुका था किन्तु वर्तमान में अनुपलब्ध होने से तथा श्रावकों के अति आग्रह वश पुनः प्रकाशन कराया जा रहा है।

इस ग्रंथ की संक्षिप्त विषय वस्तु इस प्रकार है–

प्रथम सन्धि–भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में राजा श्रेणिक ने पूछा कि जाति हीन निर्धन ग्वाल किस प्रकार स्वर्ग को प्राप्त हुआ। इसके उत्तर में श्री इन्द्रभूति गणधर इस प्रकार कहने लगे–

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड में ऋषभपुर नाम का नगर था वहाँ का राजा अरिदमन एवं नगर श्रेष्ठी का नाम अभयंकर था। इस श्रेष्ठी के यहाँ धण्णंकर व पुण्णंकर नाम के दो कर्मचारी थे। वे श्रेष्ठी के गृहकार्य, उपवन तथा धन की रक्षा करते थे। एक दिन दोनों भाई परस्पर में पुण्य-पाप तथा उसके फल का विचार करते हैं। जिससे संसार की क्षणभंगुरता का उन्हें यथार्थ भान हुआ। वे सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते है। अभयंकर सेठ उन्हें जिन मन्दिर ले जाता है। वहाँ वे विश्वकीर्ति मुनिराज का धर्मोपदेश सुनते हैं। वे अभयंकर सेठ की द्रव्य से जिनपूजा न कर अपने पास रखी पाँच कौड़ियों से ही पूजा करते हैं। भोजन सामग्री तैयार होने पर दैव योग से समागत चारण ऋद्धिधारी मुनियों को दोनों भाईयों ने आहार दिया। समाधि पूर्वक मरण कर सनत्कुमार स्वर्ग में देव हुए।

द्वितीय सन्धि–वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में कलिंग देश के दलवट्टण नगर में राजा सूरसेन व रानी विजयादेवी के अमरसेन व वइरसेन नाम के पुत्र हुए। राजा सूरसेन हस्तिनापुर के राजा देवदत्त को बहुत चाहता था अतः सपरिवार हस्तिनापुर में ही रहने लगा। तब राजा देवदत्त की रानी देव श्री पहले तो इनके रूप सौंदर्य व पराक्रम पर मुग्ध हो गयी, किन्तु बाद में उनसे ईर्ष्या करने लगी। वह इन पर शील भंग का मिथ्या दोष लगाती है। तब राजा देवदत्त क्रुद्ध होकर इन्हें प्राणदण्ड का आदेश देते हैं किन्तु

चाण्डाल उन्हें देश छोड़कर चले जाने की कहकर लाक्षादि से रंजित दो कटे सिर लाकर देवदत्त को राजकुमारों के वध की सूचना दे देते हैं।

दोनों कुमार वन में आम्रवृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं। उसी वृक्ष के ऊपर यक्ष दम्पत्ति उनके सौंदर्य पर मुग्ध होकर वइरसेन को दो आम्रफल देते हैं, जिसमें एक फल से सात दिन में राज्य व दूसरे फल के माध्यम से दिव्य पाँच सौ रत्न मिलते हैं। उसने प्रथम अमरसेन को दिया व दूसरा फल स्वयं के पास रखा।

तृतीय सन्धि—कंचनपुर के राजा का मरण हुआ, उसके कोई पुत्र नहीं था। तब उस नगर के समीप दोनों भाई पहुँचे तब वइरसेन नगर में भोजन सामग्री लेने गए तब तक राजा का चुनाव करने हेतु छोड़े गए हाथी ने अमरसेन के गले में माला डाल दी और अमरसेन राजा बने। वइरसेन एक वेश्या में आसक्त हो सुख से वहाँ रहने लगे। किसी दिन वेश्या की माँ ने इसकी आय का स्रोत जानकर उससे आम्र फल ले उसे रात्रि में घर से निकाल दिया।

चतुर्थ सन्धि—अपने मन में पश्चाताप करता हुआ वइरसेन नगर के बाहर स्थित एक मन्दिर में गया। दैवयोग से वहाँ चार चोर मिले, जो आपस में झगड़ रहे थे। तब उन्होंने बताया कि हमने एक सिद्ध योगी पुरुष को मारकर विद्या से सिद्ध की गई कथरी, लाठी व पाँवड़ी ये तीन वस्तुएँ प्राप्त की हैं। हम चार लोग हैं वस्तुएँ तीन हैं, बंटवारा कैसे हो? तब वइरसेन ने उन वस्तुओं की विशेषताऐं पूछीं। उन्होंने बताया कि कथरी से नित्य पाँच सौ रत्न झरते हैं। लाठी शत्रु में अजयेता प्राप्त कराती है तथा पाँवड़ी आकाश गमिनी है। तब वइरसेन ने न्याय करने के लिए उन तीनों वस्तुओं को अपने हाथ में लिया और आकाश में स्थित हो गया तथा ठगों को भी ठगकर वहाँ से चलता बना।

पुनः वइरसेन वेश्या के घर आ गया। तब वेश्या ने मीठी-मीठी बातें करके नित्य धन प्राप्ति का साधन पूछा तथा पाँवड़ी के माध्यम से काम मन्दिर की यात्रा का निवेदन किया जिसे वइरसेन ने पूरा किया किन्तु वह वेश्या उसे धोखा देकर पाँवड़ी पहनकर घर आ गई। वइरसेन वहीं रह गया। तब वहाँ एक विद्याधर आया उसने कहा मैं तुम्हें तुम्हारे स्थान पर छोड़ दूँगा। अभी किसी कार्य से जा रहा हूँ। तीन दिन बाद आऊँगा किन्तु तुम तब तक यहीं रहना। इधर उपवन में नहीं जाना। वहाँ विद्या से युक्त पुष्प हैं। विद्याधर के चले जाने के बाद वइरसेन उसी उपवन में चला गया तथा उसने पुष्प भी सूंघ लिया। जिससे वह गधा बन गया। जब विद्याधर ने उसे गधे के रूप में देखा तो अन्य पुष्प को सूंघाकर पुनः मनुष्य बना दिया। विद्या के बल से ऐसी सामर्थ्य भी प्राप्त हो सकती है इसमें किसी को सन्देह या आश्चर्य नहीं करना चाहिए। (**चित्रसेन पद्मावती चरित्र** में भी इसी प्रकार का कथन है जिसमें यक्ष अभिशाप से सत्य बातों को प्रगट करने से मंत्री पुत्र रत्नसार पत्थर का हो गया था। उसी यक्ष की कृपा से पुनः सामान्य मनुष्य हो गया जैसा पहले था। आज भी मंत्र तंत्रों के माध्यम से पश्चिमी बंगाल में मनुष्य को पशुवत बनाकर काम लेते हैं, तंत्र विद्या से पत्थर की मूर्ति को दूध पीते दिखला दिया था। तब व्यन्तर अपनी विद्या से क्षणभर के लिए मनुष्य को गधा बना दें तथा पुनः मनुष्य बनाकर असंख्यात प्रकार के रूप एक साथ बना सकता है। लेखक का भी आशय इसी प्रकर का प्रतीत होता है।)

तब वइरसेन ने कुछ पुष्प अपने कपड़े में बाँध लिए तथा विद्याधर के द्वारा कंचनपुर में आ गया। कंचनपुर आकर उस वेश्या ने लोभकृष्ट होकर वे पुष्प सूँघे जिससे वह गधी बन गई। वेश्या के परिजनों ने राजा से शिकायत की। राजा ने वइरसेन को पकड़ने के लिए सैनिक भेजे। वइरसेन ने उन सबको पराजित कर दिया। अन्त में स्वयं राजा अमरसेन (जो कि वइरसेन का बड़ा भाई था) युद्ध करने

के लिए आया। जब वइरसेन भी सामने पहुँचा। दोनों जैसे ही आमने-सामने हुए, उन्होंने एक-दूसरे को पहचान लिया तथा दोनों प्रेमाश्रु बहाते हुए गले मिले।

पंचम सन्धि—अमरसेन के पूछने पर वइरसेन ने अपनी तीनों वस्तुओं की प्राप्ति, वेश्या की कामदेव मन्दिर की यात्रा, वेश्या द्वारा कपट से आम्रफल तथा पाँवड़ी लिए जाने का वृतान्त, विद्याधर द्वारा कंचनपुर नगर में छोड़ा जाना, वेश्या को गधी बनाना इत्यादि समस्त समाचार कह सुनाये। तत्पश्चात् अमरसेन के कहने पर वइरसेन ने उस गधी को दूसरा पुष्प सुंघाकर पुनः पूर्व वेश्या की अवस्था में कर दिया तथा वेश्या से आम्रफल तथा पाँवड़ी प्राप्त कर ली। इसके पश्चात् अमरसेन ने वइरसेन को युवराज पद पर आसीन किया। दोनों ने मिलकर दिग्विजय की। अमरसेन का एक छत्र राज्य हुआ। पुनः वइरसेन युवराज हस्तिनापुर से देवदत्त व देव श्री को सादर ले आए तथा उन्हें सिंहासन पर बिठाया। धन्य है उन कुमारों को, जिन्होंने अपने अपकारी का भी उपकार किया।

एक दिन दोनों भाई कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करने जाते हैं। वहाँ उन्हें चारण ऋद्धिधारी मुनि मिले, जिन्हें पड़गाहन कर उन्हें नवधा भक्ति से आहार दिया तथा उन्हें देखकर पूर्व भव का स्मरण हो आया कि जब हम धण्णंकर व पुण्णंकर दीन बालक थे तब अभयंकर श्रेष्ठी के यहाँ सेवा करते थे। वहाँ हमने उन मुनिराज को आहार दिया जिसके फलस्वरूप हमें उत्तम भोग मिले हैं तथा पाँच कौड़ी से जिनेन्द्र भगवान की पूजा की थी जिसके फल से हमें पाँच वस्तुओं की प्राप्ति हुई है। (यक्ष द्वारा प्रदत्त दो आम्रफल, पाँवड़ी, यष्टि, लाठी, कथरी।

उन्होंने मुनिराज के मुखारविन्द से मंगल धर्मोपदेश सुनकर श्रावकोचित व्रतों को ग्रहण किया तथा धर्मध्यान करते हुए राज्य का विधिपूर्वक संचालन किया। किसी दिन देवसेन केवली की गन्धकुटी

(समवशरण) वहाँ आया। दोनों भाई वहाँ उनकी वन्दना करने को गए तथा वहाँ भगवान की दिव्य ध्वनि सुनकर, परम वैराग्य को प्राप्त हो महाव्रतों को अंगीकार किया। परम दिगम्बर अवस्था को धारण कर दुर्द्धर तप साधना में संलग्न हो गए।

राजा देवदत्त व देव श्री उन मुनिराजों की वंदना हेतु गए। वहाँ मुनि अमरसेन ने उन्हें कुसुमलता व कुसुमावलि की जिनेन्द्र अर्चना सम्बन्धी कथा एवं प्रीतिंकर कुमार की कथा को सुनाया।

षष्टम सन्धि–मुनि अमरसेन ने राजा देवसेन को जिनपूजा का माहात्म्य समझाने के लिए मेंढक की पूजा सम्बन्धी कथा सुनाई। उन्होंने बताया कि राजगृही नगर में नागदत्त आर्त्तध्यान से मरकर अपने घर की समीपवर्ती वापी में मेंढक हुआ। भयदत्ता जब पानी भरने जाती, वह मेंढक पूर्व स्नेह के कारण उसके आगे-आगे उछलता हुआ उसका आंचल पकड़ता था। एक दिन भयदत्ता ने सुव्रत मुनि की वंदना की, उनसे उसे मेंढक पूर्व पर्याय का पति ज्ञात हुआ। उसने स्नेह वश मेंढक को वहाँ से लाकर एक गहरी बावड़ी में रखा तथा उसे जिनेन्द्र भाषित धर्म समझाया।

विपुलाचल पर्वत पर तीर्थंकर महावीर का समवशरण आने पर राजा श्रेणिक अपने नगरवासियों के साथ उनकी वन्दना के लिए गए थे। मुँह में कमल-पुष्प की पांखुड़ी दबाकर उक्त मेंढक भी पूजा के भाव से राजा श्रेणिक के साथ जा रहा था। भीड़ के कारण अपनी सुरक्षा की दृष्टि से वह राजा श्रेणिक के हाथी के नीचे चल रहा था। अचानक वह हाथी के पैर के नीचे आ गया और दबकर मर गया। पूजा के भाव रहने के फलस्वरूप वह मरकर देव हुआ।

मुनि अमरसेन ने राजा देवदत्त को कुसुमाञ्जलि व्रत का माहात्म्य भी समझाया था। उन्होंने उन्हें बताया था कि इसी व्रत की साधना से मदनमंजूषा स्वर्ग गई और राजा रत्नशेखर, राजा वज्रसेन और रानी जयावती के पुत्र विद्याधर धनवाहन, उनका मित्र हुआ। दोनों ने अढ़ाई

द्वीप जिनालयों में मदनमंजूषा को देखा था, दोनों परस्पर पर मुग्ध थे। मदनमंजूषा के कहने पर उसके पिता ने उसका विवाह रत्नशेखर के साथ कर दिया था।

धनवाहन के चारण मुनि अमिगति से रत्नशेखर और मदनमंजूषा की प्रीति का कारण पूछने पर मुनि ने उसे बताया कि पूर्वभव में 'रत्नशेखर' प्रभावती नामक कन्या, 'धनवाहन' उस कन्या के पिता, 'श्रुतकीर्ति' पुरोहित और 'मदनमंजूषा' प्रभावती की बन्धुमती नाम की माता थी। श्रुतकीर्ति अपने पद से विचलित हुए। प्रभावती ने सन्मार्ग न छोड़ने को उसे बहुत समझाया। वह रुष्ट हुआ। उसे विद्यायें सिद्ध थीं। अत: उसने विद्या भेजकर प्रभावती को बलात मँगवाकर प्रथम तो एक निकटवर्ती वन में रखा किन्तु बाद में उसे उसने कैलाश पर्वत पर छुड़वा दिया।

यहाँ प्रभावती की देवी पद्मावती से भेंट हुई। उसने यहाँ देवों को पूजा करते देखा। उसने पद्मावती से देवों की पूजा सम्बन्धी जानकारी ली और कुसुमांजलि व्रत की विधि ज्ञात की। देवी की प्रेरणा से उसने यह व्रत लिया। मुनि त्रिभुवनचन्द ने अपनी तीन दिन की आयु शेष ज्ञात करके इसने महातप धारण किया। इसके पिता श्रुतकीर्ति ने विद्या भेजकर इसका तप भंग करना चाहा किन्तु वह सफल नहीं हुआ। प्रभावती ने समाधिमरण किया तथा अच्युत स्वर्ग में पद्मनाथ नामक देव हुई। इस देव ने अवधिज्ञान से श्रुतकीर्ति को अपने पूर्वभव का पिता तथा बन्धुमती को माता जानकर पृथ्वी पर आकर उन्हें निजबोध कराया। फलस्वरूप श्रुतकीर्ति कुसुमांजलि व्रत पूर्वक मरकर अच्युत स्वर्ग में ही सामान्य देव हुआ तथा बन्धुमती इसी स्वर्ग में कला नाम की अप्सरा हुई। स्वर्ग से चयकर देव पद्मनाथ 'रत्नशेखर', श्रुतकीर्ति का जीव 'नवाहन' और कमला 'मदन मंजूषा' हुई। इनमें रत्नशेखर और धनवाहन केवली होकर मोक्ष गए तथा मदनमंजूषा तप करके स्वर्ग गयी।

सप्तम सन्धि—मैं मुनि अमरसेन ने राजा देवदत्त को वैश्य भूषण भरत और त्रिलोक मण्डन हाथी द्वारा धारण किये कुसुमांजलि व्रत का महत्व भी समझाया। उन्होंने उन्हें उनके पूर्वभवों का ज्ञान कराने के लिए बताया था कि राम के वनवास से लौटने पर भरत दीक्षा लेने को तत्पर थे। राम ने उन्हें रोकने के लिए जलक्रीड़ा का भी प्रबन्ध किया किन्तु सफल नहीं हो सके। इसी बीच त्रिलोकमण्डन हाथी उन्मत्त अवस्था में अपना बन्धन तोड़कर नगरवासियों को सताता हुआ वहाँ आया, जहाँ भरत थे। वह भरत को देखकर शान्त हो गया था।

भरत ने हाथी के शान्त होने का कारण मुनि श्री देवभूषण से पूछा। मुनि श्री ने भरत को बताया था कि सूर्योदय और चन्द्रोदय वह और यह हाथी दोनों पूर्वभव में दो भाई थे। ये तप त्यागकर राज्य करने लगे थे। आयु के अन्त में वे आर्त्तध्यान से मरे और मरकर स्त्री पर्याय में भटकने के पश्चात् चन्द्रोदय (भरत का जीव) कुलंकर नाम का राजपुत्र और सूर्योदय (त्रिलोकण्डन हाथी का जीव) विरतास मंत्री का श्रुति नामक पुत्र हुआ। आयु के अंत में मरकर तिर्यंच हुए पश्चात् राजगृह नगर में विनोद और रमन नामक के ब्राह्मण के घर जन्मे। इस योनि के बाद दोनों हरिण दम्पत्ति हुए। हिरणी भील द्वारा मारी गई और रमन के जीव हरिण को एक मन्दिर के निकट रहने का योग मिला। वह जिन-पूजा के भावपूर्वक मरा और स्वर्ग गया तथा विनोद का जीवन तिर्यंच योनि से छूटकर धनद नाम का वैश्य हुआ। स्वर्ग से चयकर रमन का जीवन इसका भूषण नाम का पुत्र हुआ। विषयों से विरक्त होकर वह सर्पदंश से मरा और पुनः स्वर्ग गया तथा पुनः स्वर्ग से चयकर भूषण का जीव राजा हुआ पश्चात् भोगभूमि में जन्म और पुनः स्वर्ग गया तथा पुनः स्वर्ग से चयकर अभिराम नाम का चक्रवर्ती हुआ। इस पर्याय में इसने चार हजार कन्याओं को विवाहा था। विवाह करके वह उनमें आसक्त नहीं हुआ। उसने श्रावक के व्रत लिए। अन्त में यह शुद्ध भावों से मरा

और ब्रह्म स्वर्ग में देव हुआ। इसका पिता धनद वैश्य योनियों में भटकने के पश्चात् पोदनपुर में ब्राह्मण का मृदुमति नामक पुत्र हुआ। इसने वैश्यावृत्ति में धन गंवाकर चोरी की। एक दिन यह चन्द्रपुरी नगरी के राजमहल में चोरी करने गया। वहाँ इसने राजा को रानी से यह कहते सुना कि राजा के तप ग्रहण करने पर वह भी तप ग्रहण कर लेगी। मृदुमति ने राजा और रानी के वार्तालाप को सुनकर संसार को निस्सार जाना और उसने भी महाव्रत धारण करने का निश्चय किया। प्रातः तीनों महाव्रती हो गए। मृदुमति मुनि होकर विहार करने लगा। हस्तिनापुर के निकट गुणनिधि नामक चारण मुनि विराजमान थे। वे मासोपवासी महान् तपस्वी थे। अपना योग पूर्ण करके वे तो अन्यत्र विहार कर गए और मृदुमति विहार करता हुआ वहाँ आया। इसके चर्या के लिए नगर में आने पर नगरवासियों ने इसे चारण मुनि जाना और इसका भव्य स्वागत किया। सस्नेह इसे आहार दिए। पूछने पर मृदुमति मौन रहा। उसने यथार्थता प्रकट नहीं होने दी। इसके फलस्वरूप मृदुमति ने तिर्यञ्चगति का बन्ध किया और मरकर ब्रह्म स्वर्ग में देव तथा स्वर्ग से चयकर त्रिलोक मण्डन हाथी हुआ। अभिराम ब्रह्म स्वर्ग से चयकर भरत हुआ। भरत को देखकर त्रिलोकमण्डन को जातिस्मरण हुआ। यह कारण है कि वह भरत को देखकर अपने पूर्वभव में किये दुराचरण पर पश्चाताप करते हुए शान्त हो गया था। उसने अणुव्रत धारण किए थे और भरत ने तिलक लगाकर उसे मुक्त कर दिया था। नगरवासी उसे खिलाने-पिलाने लगे थे। कुसुमांजलि व्रत के प्रभाव से उसकी जग में प्रसिद्धि हुई और भरत सिद्ध हुए।

मुनि अमरसेन ने राजा देवदत्त को यह भी बताया था कि ग्वाल धनदत्त जिन-पूजा के प्रभाव से मरकर स्वर्ग गया और स्वर्ग से चयकर करकण्डु नामक राजा हुआ। इस प्रकार मुनि अमरसेन से जिनेन्द्र पूजा का माहात्म्य सुनकर राजा देवसेन राजमहल लौटे।

अमरसेन और वइरसेन ने घोर तप किया तथा सन्यास मरण करके वे दोनों ब्रह्म स्वर्ग गए। यह भी कहा गया है कि स्वर्ग से चयकर दोनों मनुष्य पर्याय में जन्मेंगे तथा तप करके सिद्ध होंगे।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी मुनिराज ऐलक जी, क्षुल्लक जी को समाधिरस्तु आशीर्वाद। मुद्रक अरिहंत ग्रॉफिक्स एवं प्रकाशक निर्ग्रंथ ग्रंथमाला को तथा प्रूफ रीडिंग में व अन्य समस्त व्यवस्था में संलग्न निस्वार्थ, समर्पित श्रद्धालु भक्त जनों को धर्मवृद्धि हेतु आशीर्वाद।

प्रस्तुत ग्रंथ ''अमरसेन चरित्र'' के सम्पादन कार्य में जो-जो त्रुटियाँ रह गयी हों तो विज्ञ संयमी जन हमें संकेत देने को सम्यक् पुरुषार्थ करें तथा सुधी पाठक जन हंसवत् गुणग्राही दृष्टि बनाकर, विनयपूर्वक ग्रन्थराज का आद्योपान्त स्वाध्याय करें। इसी में जीवन की सफलता व सार्थकता है। प्रत्येक प्राणी आत्म-कल्याण/स्वकीय शुद्ध स्वभाव को प्राप्त कर सकें, ऐसी मेरी मंगल भावना है।

''इत्यलमति विस्तरेण॥'

श्री शुभमिती कार्तिक वदी-7	जिनचरणानुचर, संयमानुरक्त
वी.नि.सं. 2527	कश्चिदल्पज्ञ श्रमण:,
विक्रम संवत्-2058	8.11.2001 पहाड़ी धीरज, दिल्ली
तृतीय संस्करण	
श्री शुभमिति आश्विन शु.	24-9-2017
वी.नि.सं. 2543	ग्रीनपार्क, दिल्ली
वि.सं. 2074	

श्री पण्डितमणि-माणिक्क विरचित

प्रथम परिच्छेद

सन्धि-1

(1-1)

तीर्थंकर-स्तुति एवं अर्हन्त-वाणी-वन्दना

घत्ता—मैं (कवि माणिक्कराज) परमसुख के कारण-स्वरूप तीर्थंकरों को प्रणाम करके मोक्षसुख रूपी रस से पूरित और भव्य जनों को सुख देने तथा दु:खों को निवारण करने में कारण स्वरूप श्री अमरसेन चरित्र का वर्णन करता हूँ।।1।।

जिन-श्रुत के निधान सभी तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ, सभी दोषों और दुर्गतियों का निवारण तथा परमसुख के करने वाले जिनेन्द्र श्री अजितनाथ, सुखों के निधान तीर्थंकर सम्भवनाथ, भव्यजनों के विघ्नों का नाश करने वाले अभिनन्दननाथ, श्रेष्ठ विचारों में लीन श्री सुमतिनाथ, परमपद में लीन पद्मप्रभ, राग-द्वेष से रहित जिनेन्द्र सुपार्श्वनाथ, कमल को विकसित करने वाली चन्द्रमा की किरणों के समान सुखकारी जिनेन्द्र चन्द्रप्रभ, तीनों लोकों में वन्द्य जिनेन्द्र पुष्पदन्त, सम्पूर्ण व्रतों में प्रवीण जिनेन्द्र शीतलनाथ, शिवपद में नित्य लीन रहने वाले श्रेयांसनाथ, इन्द्र द्वारा अर्चित जिनेन्द्र वासुपूज्य, विमलतर गुणों से सूर्य स्वरूप विमलनाथ, क्रोध, मान, माया रूपी शत्रुओं और मरण से मुक्त अनन्तनाथ, धर्म और आगम-ज्ञान के भण्डार जिनेन्द्र धर्मनाथ, जग में प्रधान जिनेश्वर श्री शान्तिनाथ, विमलज्ञानधारी और चींटी आदि क्षुद्र जन्तुओं पर दया करने वाले श्री कुंथुनाथ, लोकाकाश और अलोकाकाश के ज्ञाता अरनाथ, कर्म-व्याधि से रहित श्री मल्लिनाथ, शिवरमणी के स्वामी मुनिसुव्रत, इसके

पश्चात् कर्मों के कृतान्त-स्वरूप जिनेन्द्र नमि, भयभीतों के शान्तिदाता श्री नेमिनाथ, बहुविघ्नों का नाश करने वाले श्री पार्श्वनाथ और चारों गतियों के नाशक, जिनके कल्याणकों से क्षेत्र पवित्र है, तथा जिन्होंने धर्मसूत्र रूप में प्रकट किया उन जिनवर वर्द्धमान को प्रणाम करता हूँ। मैं (कवि) अर्हन्तों का दास और उनके चरणों का भक्त हूँ।।1-15।।

घत्ता–इन सभी तीर्थंकर को और जो इस धरणी पर हो चुके हैं तथा आगे होंगे उन सभी को प्रणाम करने के पश्चात् तीनों लोकों में प्रधान, कुमति को दूर करने वाली अर्हन्तों की वाणी को निज हृदय में धारण करके (उसे नमस्कार करता हूँ)।।1।।

(1-2)

गौतम-गणधर की स्तुति एवं गुरु-स्मरण

ज्ञानी गौतम-गणधर को नमस्कार करने के पश्चात् जिसके द्वारा अर्हन्त वाणी सम्यक् रूप से कही गई, भवसागर से पार होने को सुखकर नौका के समान पदार्थ बताये गये, उनके अनुक्रम में निज आत्मा के स्वरूप को भली प्रकार जानकर उसमें तन्मय रहने वाले प्रधान मुनि आगम के शब्द और अर्थ के भण्डार हुए जिसके द्वारा चन्द्रमा को धारण करने वाले (शिव) और (कामदेव के कथित) पाँचों बाण जीते गए, विज्ञान और कला के भण्डार तथा उसके असीम ज्ञान को प्राप्त जिसके द्वारा समान रूप से भव्य जीव पार लगाये गये, राग-द्वेष से रहित संयमी उस साधु सन्तति के मुनिवृन्द के स्वामी जिसके द्वारा प्रवीणतापूर्वक (इस) ग्रन्थ-कथन की प्रेरणा की गई, निज ध्यान (और) परमपद में लीन होकर (जिसने) तप-तेज से निज तन क्षीण किया उन प्रवीण श्री खेमकीर्ति के पट्ट में जिसका हेमकीर्ति नाम था, उसके पट्ट में दयालु यतियों में वरिष्ट निर्ग्रंथ जिसके द्वारा भली प्रकार जिनागम के भेद कहे गए वे कुमारसेन उनके पट्ट पर बैठे बुद्धिमानों में प्रधान मदरूपी अन्धकार के लिए सूर्य स्वरूप श्री हेमचन्द्र, उनके पट्ट में व्रतों में धुरन्धर प्रवीण और

तप से क्षीण शील की खदान, दयालु, अमृत के समान वाणी वाले निर्ग्रन्थ अपने गुरु श्रेष्ठ पद्मनन्दि को प्रणाम करने के पश्चात् शब्द और अर्थ से सुन्दर कर्ण-सुखद् कथा कहता हूँ, श्रवण करें।।1-14।।

घत्ता—जो बुद्धिमानों को चिन्तामणि रत्न और धर्मरस रूपी नदी के समान है, राजा श्रेणिक की सुखदायिनी वह कथा गौतम-गणधर ने इस प्रकार कही है।।2।।

(1-3)

रुहियास (रोहतक) नगर-वर्णन

पृथ्वी-मण्डल में प्रधान, गुणवरिष्ठ (और) देवताओं के मन में भी भली प्रकार विस्मय उत्पन्न करने वाला, श्रेष्ठ और पवित्र, तीन प्रकारों से सुशोभित इस पृथ्वी मण्डल पर पार प्राप्त देव-पण्डित बृहस्पति के समान तथा बैरियों को हृदय की कठिन शल्य स्वरूप प्रतीत होने वाला, जहाँ पांडुर एवं स्वर्ग-वर्ण वाली शुभ ध्वजाओं से युक्त जिन-मन्दिर निरन्तर शोभायमान रहते हैं, जहाँ सत्कर्मों के समान मन को सुख देने वाले अट्टालिकाओं और तोरणों से युक्त भवन हैं, जहाँ चारों ओर द्रव्य की चर्चा और श्रेष्ठ व्यापारी जहाँ पदार्थों का व्यापार करते हैं, मार्ग लोगों के कोलाहल से पूर्ण रहते हैं, जहाँ धन-सम्पन्न महाजन निवास करते हैं, जहाँ सभी दुकानों में विविध प्रकार की सामग्री भरी पड़ी रहती है, (जहाँ) कसौटियों पर भौम्यखण्डों (स्वर्ण, रजत आदि) को कसा जाता है, जहाँ नित्य अर्चना, पूजा, दान से सुशोभित शुद्ध निर्मल-बुद्धि से सम्पन्न महाजन निवास करते हैं, जहाँ उत्तम चारों वर्ण के लोग पुण्य से प्राप्त दिव्य-भोग भोगते हुए विचरण करते हैं, जहाँ सभी आचार-व्यवहार से परिपूर्ण हैं, भव्य पुरुष (जहाँ) सप्त व्यसनों और मद से रहित हैं, सोने के कणों से विशेष रूप से मण्डित (और) सभी प्रकार के श्रृंगार किए हुए सौभाग्य की निधान, जैनधर्म और शीलगुण से युक्त जहाँ की मानिनी नारियाँ मानपूर्वक श्रेष्ठ लीलायें किया करती हैं,

जहाँ चोर, कपटी, लुटेरे, दुष्ट, दुर्जन, क्षुद्र, खल, पिशुन, धृष्ट, दुखी एवं अनाथ जन पृथ्वी पर दिखाई नहीं देते। सभी जन प्रवीण और प्रेमासक्त हैं। जहाँ घोड़ों के खुरों से दलित मार्ग सुशोभित रहते हैं, धरातल पान के रंग में रंगा रहता है (ऐसा एक) रूहियास नाम का सुन्दर (नगर) कहा है।।1-16।।

घत्ता–सुख-समृद्धि एवं यश के लिए मानों यह रत्नाकर था, बुधजनों से युक्त मानों यह इन्द्रपुरी ही था। शास्त्रार्थों से सुशोभित तथा जनमन को मोहित करने वाले सर्वश्रेष्ठ नगरों का मानो यह गुरु ही था।।3।।

(1-4)

ग्रंथ-प्रणयन-प्रेरक चौधरी देवराज की वंश-परम्परा

बैरियों को भय उत्पन्न करने वाले शहंशाह राजा सिकन्दर उस नगरी में अपनी प्रजा का पालन करता है। उस राज्य में दुखी जनों का पोषक, गुणों का निधान और व्यापारियों में प्रधान व्यापारी रहता है। वह अग्रवाल अन्वय रूपी कमल के लिए सूर्य और सिंहल (गोत्र) रूपी पानी में होने वाले नीले कमल के लिए चन्द्रमा के समान (था)। वह मिथ्यात्व, सप्त-व्यसन (और) इन्द्रिय-वासनाओं से विरक्त तथा जिन-शासन और निर्ग्रन्थों के चरणों का भक्त था। (उसका) नाम चौधरी चीमा था। वह (अपने) वंश का भूषण और सुजनों का पोषक तथा (उन्हें) संतुष्ट रखने वाला था। माल्हाही नाम की उसकी स्त्री थी। (वह) उन्हें संतुष्ट रखने वाली थी। (वह) मीठी वाणी बोलती थी। गुणों के समूह और शील की खदान थी। उसका पुत्र चौधरी करमचन्द अर्हन्तों का सेवक और अनुपम गुणों का निवास-स्थल था। जिसके द्वारा जैनधर्म पर देह आबद्ध की गई है, (जो) पुरजनों के स्वामी राजा के हृदय को इष्ट था। जो जिनेन्द्र के चरणोदक से पवित्र (था)। जिसका चित्त आगम-रस में मग्न रहता था। जिसने चारों प्रकार के संघों का व्ययभार वहन किया था

और श्रावक के आचार को भली प्रकार पाला था। जो नित्य धर्म के मार्ग में विचरता था। चारों प्रकार के दान से ऐसा प्रतीत होता था मानो (वह) गन्धहस्ति हो। जिसने अपनी देह सम्यक्त्व रत्न से अलंकृत की थी। (जो) कनकाचल के समान निष्कम्प और धैर्यवान था। परिजन रूपी श्वेत कमल-वन में वह सुधी हंस स्वरूप था जिनेन्द्र भक्तों के बीच में जिसने प्रशंसा प्राप्त की थी। उसकी मृगनयनी दिउचन्दही स्त्री थी। (वह) जिन-श्रुत और गुरु की भक्त तथा शील से पवित्र थी। उसने शील की खदान, अमृत के समान मिष्ठ भाषा-भाषी चौधरी महणा नाम का पुत्र उत्पन्न किया। वह धन-धान्य-स्वर्ण से सम्पन्न, पंडितों का पंडित और गुणों से महान् तथा शान्त (था)।।1-16।।

घत्ता—वह दुखी जनों के दुखों का नाश करने वाला, बुधजनों के समूह का शासन करने वाला, जिन-शासन रूपी रथ की धवल धुरी, विद्या और लक्ष्मी का घर, रूप से मानों समुद्र था। (इसमें) अहर्निशि वैभव का विकास किया था।।4।।

(1-5)

चौधरी देवराज का कौटुम्बिक-परिचय

(महणा की) खेमाही नाम की पत्नी देह में निबद्ध (प्राणों के समान) प्रेमी-प्रीतम (महणा) से प्रेम करती थी।।1।। देवगंगा की गति के समान मन्दगामिनी, व्रतों से लीला करने वाली सती, शील से पवित्र (वह) परिवार का पोषण करने वाली थी।।2।। मनुष्य रूपी रत्न उत्पन्न करने की मानों खदान थी। वाणी-बोलने में वीणा वाद्य तथा कोयल के समान थी।।3।। अपने सुहावने सौन्दर्य तथा वस्त्रों से श्री राम की सीता जैसी श्रेष्ठ दिखाई देती थी।।4।। उसके उदर से चार (पुत्र) रत्न उत्पन्न हुए। (वे ऐसे प्रतीत होते थे) मानों अनन्त चतुष्टय ही मनुष्य रूप धारण करके आ गये हों।।5।। उन चारों में प्रथम पुत्र प्रसन्न मुख, लक्षावधि लक्षणों से युक्त, व्यसनों से मुक्त, अतुलित

साहसी, सहस्त्रों को अकेले ही पकड़ लेने वाला, गृह-सम्पदा के त्याग से (दानी) कर्ण के समान, पर्वत के समान धैर्यवान, समुद्र के समान गम्भीर होने से ऐसा प्रतीत होता था मानों शेष नाग या विष्णु हो, देवी सूर्य चन्द्र हो।।6-8।। सुख पूर्वक प्रजा का पोषण करने से ऐसा प्रतीत होता था मानों कल्पवृक्ष हो, जैनधर्म को स्थिर रखने और उसकी प्रभावना करने से ऐसा प्रतीत होता था मानों कुबेर हो।।9।। जिसके द्वारा दान और अपने यश से पृथ्वी भर दी गई थी। जिसने अपने सुख के समान सुखों से सुधी और सुजनों का पालन किया।।10।। उसका नाम चौधरी सुधी देवराज था। वह जैनधर्म की निधि था। जैनधर्म का भारवहन करने में धुरन्धर था।।11।। विज्ञान में कुशल, जिनेन्द्र द्वारा भाषित धर्मसूत्रों को जानने वाला, राजकार्यों एवं व्यापार कार्यों में कुशल गम्भीर, यशागार, बहुगुणज्ञ, राजा के मन को विविध भाँति से आनन्दित करने वाला, निर्मल परिणामी, झासू चौधरी दूसरा सुपुत्र था।।12-14।। ऋषि और देवभक्त, गृहस्थी का भारवहन करने में धुरन्धर, कमल के समान मुखवाला, नित्य उपकार करने वाले तीसरे पुत्र का नाम चुगना चौधरी कहा गया है।।15-16।। कुल का नाम प्रकाशित करने वाला, सम्पूर्ण विद्या-विलास का प्राप्तकर्ता, जिनसिद्धान्त रूपी अमृत-रस से तृप्त चित्तवाला चौधरी छुट्टा नाम से चौथा पुत्र कहा गया है।।17-18।।

घत्ता–जिनमति से सुशोभित ये चार भाई थे। (इनमें चौधरी) मतिमान देवराज नाम का बड़ा भाई था। पृथ्वी पर अपने कुल का कमल स्वरूप वह नाना प्रकार के सुख-विलास करता हुआ यति जनों का पोषण करता था।।1-5।।

(1-6)

चौधरी देवराज और कवि माणिक्कराज का ग्रन्थ-प्रणयन-विषयक विचार-विमर्श

दूसरे दिन आगम आदि जिनेन्द्र द्वारा कहे गए ग्रन्थों में दक्ष,

सम्यक्त्व रूपी रत्न से अलंकृत हृदयवाला चौधरी देवराज साहु राग-रंजित होकर पैदल ही जिनमन्दिर गया।।1-2।। वहाँ साहू देवराज ने भावपूर्वक वन्दना की तथा जिन-ग्रन्थों को नमन करने के पश्चात् सरस्वती-भवन में उन्हें सिद्धान्तग्रन्थों के अर्थ को मन से भाते हुए, स्वर रूपी धन से (उपदेश से) पुरजनों को सुखकारी, जिनगुरु के दास माणिक्कराज दिखाई दिये।।3-4।। माणिक्कराज ने भी-जो बहुश्रुतों की गोष्ठी को प्रकाशित किया करते थे, उसके (देवराज के) साथ सम्भाषण किया।।6।। जिनेन्द्र भगवान् की अर्चना के लिए प्रसारित भुजाओं वाले बुधसूरा के पुत्र (माणिक्कराज) द्वारा कहा गया।।7।। हे अग्रवाल-कुलरूपी कमल के लिए सूर्य के समान, पण्डित जनों के मन की आशा को करने वाले, जैनधर्म में धुरन्धर, गुणों के आगार तथा यश के प्रसार से दिशा-दिशान्तरों को धवल बनाने वाले, चौधरी महणा के सुपुत्र सुनो, अपने मन में कलिकाल प्रकट हो गया है ऐसा विचार धारण करें।।8-10।। दोषों को ग्रहण करने वाले दुर्जन और मूर्ख पृथ्वी पर प्रचुरता से बढ़ रहे हैं।।11।। हे साहु! मेरी बात सुनो, अपने मन में पार्श्वनाथ को धारण करो।।12।। शास्त्रार्थ में कुशल (हे चौधरी) श्री अमरसेन-वइरसेन के चरित को लय और रसों से भरो।।13।। पृथ्वी पर उनका श्रेष्ठ वंश ऐसा प्रतीत होता है मानों हीन पुरुषों को दुस्साध्य आदिनाथ का वंश हो, जहाँ श्रेष्ठ तप धारण करने वाले बाहुबलि जैसे पुरुष, प्रमुख स्त्रियाँ और जैन आचार्य सिंह जन्में।।14-15।।

घत्ता–उसके (पं. माणिक्कराज) के वचन सुनकर मन में पुलकित होकर देवराज कहता है, हे बालब्रह्मचारी बुद्धिमान पण्डित माणिक्कराज मेरी एक छोटी सी बात सुनो।।1-6।।

(1-7)

पं. माणिक्कराज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अमरसेन-वइरसेन का चरित-श्रवण हेतु निवेदन एवं पं. जी द्वारा स्वीकृति

अपने घर में उत्पन्न कल्पवृक्ष के सुखद फल को कौन नहीं चाहता है?।।1।। यदि पुण्यकर्म से कामधेनु प्राप्त हो जाय तो धूलि उड़ाने वाले हाथी को आश्रय देकर उसे कौन घर से निकालेगा?।।2।। आपने मेरे प्रति स्वयं कृपा की है। हे (कविवर) आज मेरा जीवन सफल हो गया।।3।। कविजनों के दुर्लभ गुण जिससे प्राप्त हुए वह मेरा जन्म धन्य है और चित्त प्रसन्न है।।4।। यह अज्ञानी जीव मोहवश अनन्तानन्त काल तक संसार की विविध योनियों में भ्रमण करता है।।5।। जिस किसी प्रकार जब वह तरुणाई को प्राप्त करता है तो काम के वशीभूत होकर बैर भाता है।।6।। उचित और अनुचित का भेद भी नहीं जानता। वह न अर्हन्तदेव को जानता है, न शास्त्र को और न गुरु को।।7।। धन के लिए खेद-खिन्नित होकर दसों दिशाओं में दौड़ता है। किन्तु पर से भिन्न चेतन का ध्यान नहीं करता।।8।। लोभ में बँधकर असत्य भाषण करता हुआ परधन एवं परस्त्रियों का मन में स्मरण करता हुआ, मिथ्यात्वरूपी विषयरस के पान में तृप्त होता हुआ किसी भी प्रकार जिनधर्म को प्राप्त नहीं करता।।9-10।। यदि प्राप्त कर भी लेता है तो तत्त्व नहीं जानता। विफल होकर वह मनुष्यता को हार जाता है।।11।। समुद्र में गिरे हुए रत्नों के समान श्रावक-कुल में जन्म दुर्लभ है। महान पुण्य से मुझे यह सत्कार्य प्राप्त हुआ है।12।। हे पंडित! मुझे श्री अमरसेन और वइरसेन का चरित सूत्ररूप में शीघ्र कहो।।13।। वे श्रवण (कर्ण) धन्य हैं जो चित्त स्थिर करके जिनवाणी सुनते हैं। इस विषय में अपने हृदय में कोई सन्देह मत करो।।14।।

घत्ता—इस प्रकार चौधरी के वचन सुनकर पंडित माणिक्कराज ने

प्रसन्नमुख से हर्षित होकर सैकड़ों प्रकार के सुखों को देने वाले अपने काव्य रूपी रसायन को मन देकर आरम्भ किया।।1-7।।

(1-8)

दुर्जन-स्वभाव-दर्शन, कवि का लाघव प्रदर्शन, कलिकाल स्थिति तथा ग्रन्थ-प्रणयन-निश्चय

काम, क्रोध, मान और लोभ में आसक्त दुर्जन पुरुषों से दूर निवास करना अच्छा होता है।।1।। दुर्जन और सर्प स्वभाव से एक हैं। छिद्र देखकर सर्प जैसे हितकारी दूध को त्याग देता है इसी प्रकार दुर्जन हितैषी प्रजा का भी साथ नहीं देता (त्याग देता है)।।2।। दुर्जन सार वस्तु का त्याग कर देने वाली चलनी और लघु आघात से टूट जाने वाले कांच के समान होता है। वह उत्तम पात्रों के साथ दिखाई नहीं देता।।3।। पात्र और अपात्रों का ये भेद नहीं जानते। वह विषयों में आसक्त रहते हैं और धन को मान्यता देते हैं।।4।। यदि दुर्जन की माता सुजन होती है तो वह ऐसे मनुष्य को गर्वपूर्वक त्याग देती है।।5।। दुर्जन विषय-कषायों में मग्न रहता है। अच्छा हुआ तो फिर काम में उन्मत्त रहता है।।6।। जो भव्य जन शीलगुणवान हैं, विषय-कषायों के राग को वे त्याग देते हैं।।7।। जो शोकप्रद इन्द्रिय-दमन करता है, दस धर्म और रत्नत्रय से अलंकृत रहता है।।8।। वह भव्य पुरुष निधियाँ पाकर तीन खण्ड पृथ्वी का पालन करता रहता है और अनिवार्य रूप से दान देता है।।9।। ऐसे भव्य जन मुझ पर दया करो। (मेरी) कर्म प्रकृतियों को चूरकर (मुझे) मुक्त करो।।10।। यह कथा दुर्लङ्घ्य है, मेरी तुच्छबुद्धि है, मैं गाथा और दुबई छन्द नहीं जानता हूँ।।11।। जिनमार्ग नहीं जाना है, मिथ्यात्व में रति है, चौपाई, दोहा और पद्धड़िया छन्द तथा गति नहीं जानता हूँ।।12।। हे महावीर स्वामी! व्याकरण और तर्क हृदय में नहीं है। कथा न देखी और ना किसी स्थान पर सुनी है।।13।। लेखन के

अठारह भेद मैं नहीं जानता हूँ। शब्दों के शुभ और अशुभ हेतु (भी) नहीं जानता हूँ।।14।। बोलते हुए वायु स्खलित हो जाती है (तो भी) अनुराग पूर्वक ललित अक्षरों (से) कहता हूँ।।15।। इस महान शास्त्र से मुझे स्नेह है किन्तु मेरे हृदय में शंका बढ़ रही है।।16।। कलिकाल में कठिनाई आती है। लोग कुविचारी और दरिद्रता से दग्ध, मिथ्यात्व से लिप्त, दुर्व्यसनों में आसक्त, धर्म से च्युत और प्राण चले जाने पर भी मदिरा-पान में मत्त हैं।।17-18।। बुद्धिहीन और स्नेहविहीन ऐसा जनसमूह घर-घर में अवगुणों को प्रकट करता है।।19।। विविध प्रकार के दुराशयी दिखाई देते हैं। वे जिनमत से रहित होकर चारों गतियों में भ्रमण करते हैं।।20।।

घत्ता—सोच-विचार कर त्याग करता है। इन्द्रिय-जयी जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ। दोषों का त्याग करके सम्यक्त्व का निर्वाह करता हूँ। उदासीनता पूर्वक मन स्थिर करके गणधर मुक्त हुए तो फिर क्या हमें सुख नहीं (होगा)? अर्थात् अवश्य प्राप्त होगा।।1-8।।

1-9)

कथा-प्रारंभ वीर-समवशरण का विपुलाचल पर आगमन और वहाँ श्रेणिक का गमन

कृत कर्म महान् है और बुद्धि यद्यपि तुच्छ है (तो भी) यह सुकथा धृष्टतापूर्वक प्रकट करता हूँ-कहता हूँ।।1।। हे भव्यजन! क्षण भर में संकल्प और विकल्प त्याग करके स्थिर मन से सुनो।।2।। इस जम्बूद्वीप में श्रेष्ठ और पवित्र छह खण्डों से सुशोभित भरतक्षेत्र है।।3।। उसमें मगध देश है और मगध देश के मध्य में स्थित मनभावन श्रेष्ठ राजगृही नगर सुहावना लगता है।।4।। धन-धान्य से समृद्ध और बुधजनों से सहित वह नगर ऐसा प्रतीत होता है मानों देव और विद्याधरों का नगर ही आकर प्राप्त हो गया हो।।5।। उसमें अर्हन्त के भक्त चारों वर्ग के लोग रहते हैं। राही भी (वहाँ) स्थिर चित्त से जिनेन्द्र की पूजा करता है।।6।। उस नगर में शत्रुओं को भय

उत्पन्न करने वाला तथा प्रजा का पालन करने वाला राजा (श्रेणिक) राज्य लक्ष्मी को सुखपूर्वक भोगता है।।7।। उसकी रानी चेलना अमृत के समान मिष्ट भाषिणी, जिनशासन की भक्त और सौन्दर्य की खदान है।।8।। वे दोनों सुखपूर्वक राज्य करते हुए विभिन्न दिशाओं में परस्पर में मन-इच्छित रति-सुख भोगते हैं।।9।। उसी समय विपुलाचल पर्वत के शिखर पर अतिशयों से मण्डित, इन्द्र के द्वारा पूजित, अठारह दोषों से रहित, आठ प्रातिहार्यों से सहित, आनन्दकारी जिनेन्द्र तीर्थंकर महावीर का समवशरण आया। उसके अतिशय से उपवन भली प्रकार फल गया।।10-12।। निर्जल स्थान प्रचुर जल से युक्त हुए। वनपाल का मन (यह सब) देखकर हर्षित हुआ।।13।। वहाँ से श्रेष्ठ पवित्र फल-फूल लेकर और राजा के आगे रखकर वह समाचार कहता है।।14।। हे राजाधिराज! कुछ सुनिये, विपुलाचल पर भगवान महावीर का संघ आया है।।15।। ऐसा सुनकर राजा ने उसे शीघ्र अनेक वस्त्र और आभूषण देकर संतुष्ट किया।।16।। श्री जिनेन्द्र महावीर के चरणों का भक्त वह राजा सहर्ष सिंहासन से उठा।।17।। जिस दिशा में ज्ञान-किरण वाले जिनेन्द्र थे उस दिशा में आगे की ओर सात पद चलकर परमेश्वर महावीर को प्रणाम किया।।18।। राजा श्रेणिक के द्वारा परोक्ष में वन्दना की गई और क्षण भर में आनन्द भेरी बजवाई गई।।19।। आनन्द भेरी के शब्दों से पुरजन शीघ्र जिनेन्द्र की वन्दना, अर्चना, यात्रा और भक्ति हेतु एकत्रित हुए।।20।। राजा चेलना के साथ हाथी पर चढ़कर जहाँ वीतराग (महावीर) का समवशरण आया था वहाँ गया।।21।। प्रिया के साथ हाथी से नीचे उतर कर वहाँ उसने समवशरण में प्रवेश किया और जिनेन्द्र महावीर की स्तुति की।।22।।

घत्ता–सौन्दर्य के प्यासे पुरुषों को जलाशय स्वरूप संवेगातुर राजा युगल रूप से नामोच्चारण करते हुए आकर इस प्रकार कहता है।।1-9।।

(1-10)

राजा श्रेणिक की वीर-वन्दना एवं स्तुति

कर्मरूपी सघन बादलों को प्रचण्ड वायु के समान, कामरूपी अग्नि की जलन शान्त करने को बरसने वाले मेघ के समान, विषय रूपी सर्प के विष को दूर करने वाले, संसार को सार-स्वरूप नहीं मानने वाले, सोलह शृंगार का त्याग करने वाले, स्वर्ण आदि का त्याग करने वाले, मारीच की पर्याय में निज भविष्य को जानने वाले, एक योजन तक पहुँचने वाली अर्द्धमागधी भाषा-बोलने वाले, देह की दीप्ति से सूर्य की कान्ति को जीतने वाले, अशोक वृक्ष से अलंकृत, तीन छत्र और चँवर-समूह से यश अंकित करने वाले हे वीर! आपकी जय हो।।1-5।। नित्य गन्धोदक की वर्षा होती है। इन्द्र, नरेन्द्र और नागेन्द भी नित्य नमस्कार करते हैं। देव पुष्प-वर्षा कर रहे हैं, कुगति-गमन से मन को रोकने में समर्थ धर्मचक्र वाले वीर! आपकी जय हो।।6-7।। वे कार्य आपके धन्य हैं जो तीर्थंकरत्व को जन्म देते हैं। वे हाथ सफ़ल हैं जो (आपकी) पूजा रचाते हैं।।8।। वे कर्ण धन्य हैं (जो) गुणी जनों के समूह को सुनते हैं। वे नेत्र धन्य हैं (जो) आपकी छवि के दर्शन करते हैं।।9।। वह रसना (धन्य है जो) आपके गुणों में आसक्त दिखाई देती है। यहाँ साधु पुरुष वही है जो आपका अनुगमन करता है।।10।। धन वह है जो आपके चरणों की पूजा करने के काम आता है। हृदय वह है जहाँ आपका और सम्पूर्ण व्रतों का आवास होता है।।11।। आपकी ज्ञान किरण के प्रकाश से मिथ्यात्व वैसे ही विलीन हो जाता है जैसे प्रकाश के आगे उल्लू पक्षी।।12।। आप परमपद मुझे भी दें। दुर्गति में पड़ने से (पहले) मुझे छीन लो अर्थात् बचाओ।।13।। इस प्रकार जो कामबाण से विद्ध नहीं हुए उन वीर की ललित अक्षरों से (श्रेणिक) स्तुति करता है।।14।।

घत्ता–तीन प्रदक्षिणायें देकर तथा भक्ति करके ज्ञानमय जिनेन्द्र (वीर) की वन्दना की। (इसके पश्चात्) यतीश्वरों में प्रधान गौतम

गणधर की भी हँसकर वन्दना करके (श्रेणिक) मनुष्यों के कक्ष में बैठ गया।।1-10।।

(1-11)

राजा श्रेणिक का ग्वालबाल के सम्बन्ध में प्रश्न और गौतम-गणधर द्वारा समाधान

(राजा श्रेणिक ने समवशरण में) वह मुनि और श्रावक-धर्म सुना जिससे देव और मनुष्य मोक्ष-गमन प्राप्त करते हैं।।1।। इसके पश्चात् उचित अवसर पाकर राजा के द्वारा भली प्रकार ललित अक्षरों से पूछा गया।।2।। हे प्रवीण! जो निम्न जाति का था वह अहीर का बालक सुरलोक (स्वर्ग) क्यों गया? बताइए।।3।। गौतम-गणधर भी ऐसा सुनकर (महावीर को नमन करते हुए) कहते हैं—उस बालक का नाम धण्णंकर है।।4।। हे राजन! सावधान होकर सुनो—द्वीपों में जम्बूद्वीप एक प्रधान द्वीप है।।5।। उसके मध्य में कनकाचल सुशोभित होता है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों विधाता ने भूमि को मापने के लिए दण्ड का निर्माण किया हो।।6।। उसकी दक्षिण दिशा में भरतक्षेत्र है, जहाँ देव, मनुष्य और विद्याधरों के घर हैं।।7।। जहाँ सुंदर नगर हैं, पुण्यातन स्वरूप सघन वृक्ष हैं।।8।। जहाँ हंस और कमलों से मण्डित सरोवर निरन्तर सुशोभित रहते हैं।।9।। जहाँ गो-धन से गोकुल सुशोभित होता है, सफ़ेद बतख पक्षियों से तालाब शोभता है।।10।। दधि मन्थन करते समय मथानी चलाने से उत्पन्न मथानी में बंधी हुई छुद्र घंटियों की आवाज से हर्षित सिर से मोर नाचते हैं।।11।। जहाँ समृद्ध पट्टण हैं। मठ और देव-विहार संघ के लिए है।।12।।

घत्ता—जहाँ अति सुकुमार मैना पक्षी लताओं पर क्रीड़ा करते हैं। भौंरे तालाब में गुन-गुनाते हैं। (पिंजड़े में बन्द तोते ऐसे प्रतीत होते हैं) मानों वे भयभीत होकर नीलाम्बर धारी हलधर को कह रहे हैं कि उन्हें निरापद स्थान में रखो जहाँ उन पर आक्रमण न हो सके, आक्रमण न करो, न कराओ।।1-11।।

(1-12)

ऋषभपुर-नगर-वर्णन

जिस नगरी में दंड छतरियों (छातों) में, भग्नता विधुर जनों में, मारपीट गन्ने के सार अंश में और मद हस्ति-वर्ग में ही था (जन समुदाय में नहीं)।।1।। वहाँ सिंह ही स्वच्छन्द दिखाई देते हैं। (मनुष्य नहीं), जहाँ कर पीड़न पाणिग्रहण में है (अन्यत्र नहीं)।।2।। जहाँ मलिनता-व्रत, तप, नियम और शील गुण से युक्त मुनि की देह पर है (अन्यत्र नहीं)।।3।। याचना-शिशु बालक-बालिकाओं में है (अन्य किसी में नहीं)। हे राजन् सुनो! कृपणता-मधु-मक्खियों के छत्ते में या काल (यम) में है (अन्यत्र कहीं नहीं)।।4।। जहाँ पक्षपात पक्षियों के संघ में ही है (अन्यत्र नहीं), लोभ यात्रा (तीर्थाटन) का है (वैभव आदि का नहीं, राग-पक्षियों के मुँह में है (मनुष्यों में नहीं)।।5।। जहाँ कलह-(द्वन्द्व) स्त्री-सहवास में है (श्रेष्ठ पुरुषों में नहीं), जहाँ प्रीतम का वियोग नखों के छेदन में है (स्त्रियों में नहीं)।।6।। ग्रहण जहाँ पौर्णमासी के चन्द्र मात्र का होता है (किसी अन्य का नहीं) मान-भंग-जहाँ पर वस्तु के अनुराग से होता है (अन्य किसी कारण से नहीं)।।7।। जहाँ निर्गुण इन्द्रधनुष है (अन्य कोई नहीं), कठिनता (कड़ापन) जहाँ स्त्रियों के स्तनों में है (अन्य नहीं)।।8।। सप्त व्यसनों में कोई एक व्यसन भी नहीं है। जिनेश्वर की परमज्योति-रति को छोड़कर कोई रति (राग) नहीं है।।9।। इस लोक में प्रसिद्ध ऐसा नगरों में प्रधान ऋषभपुर नामक नगर है। वह देवों को भी प्रिय है।।10।। बहु वैभव से समृद्ध, श्रेष्ठ और पवित्र है। कविजन शब्द और अर्थ से शोभते हैं।।11।। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों देवों के निवास से सुशोभित हो। उसके भवन देव भवन की उपमा को धारण करते हैं।12।। श्रेष्ठ सम्पदा रूपी लक्ष्मी से पृथ्वी पर ऐसा प्रतीत होता है मानों इन्द्र का नगर ही अवतरित हुआ हो।।13।। जहाँ रात्रि में चारों दिशाओं में ऊँचे साल और हवा में झूमते हुए तमाल वृक्ष

शोभते हैं।।14।। जहाँ स्थित श्रेष्ठ परिखा दीर्घाकार सर्पकुण्डली के समान शोभती है।।15।। वह परिखा सती स्त्री के चित्त के समान पर पुरुषों से अलंघ्य, गम्भीर और महान् बुधजनों के समान सुस्थिर है।।16।। जहाँ परमार्थ स्वरूप निर्मित मठ, देवालय, विहार और चौराहों पर चौक तथा तोरण शोभते हैं।।17।। जहाँ नभस्पर्शी श्रेष्ठ तिलक और अंजन वृक्षों से वन अलंकारगृह के समान (शोभते) हैं।।18।। जहाँ राजा के गमनागमन के लिए मदोन्मत्त हाथी और गोपुर (दरवाजे) हैं।।19।। जहाँ मनोहर राजमार्ग का धरातल पान की पीक के रंग के रंगे हुए हैं।।20।।

घत्ता–इस नगर का राजा विनयवन्त और चतुर है। पराया धन हरने में पृथ्वी पर वह पंगु, परिस्त्रियों को देखने के लिए अन्धा और दूसरा की कथा कहने में गूंगा है, किन्तु लोगों को दान देने में उसे पाबन्दी नहीं है।।1-12।।

(1-13)

ऋषभपुर के राजा अरिमर्दन, श्रेष्ठी अभयंकर और उसके कर्मचारी धण्णंकर-पुण्णंकर का परिचय एवं पुण्य-पाप-फल वर्णन

अतिबलशाली राजाओं को जिसके द्वारा दण्ड धारण किया गया (वह) अरिमर्दन नाम का प्रचण्ड राजा है।।1।। देवलदे नाम की उसकी पटरानी सौन्दर्य की खान, गुलाबी वर्णवाली, गजगामिनी, मिष्ट-भाषिणी, सुखनिधान, शील की खान और जिनेन्द्र तथा गुरु के चरणों की भक्त है।।2-3।। पृथ्वी पर वह प्रधान राजा मंत्रियों से मंत्रणा ज्ञात करके भली प्रकार अपने नगरवासियों की सेवा करता है।।4।। वहाँ श्रुतज्ञ और ऋद्धियों से सम्पन्न, परोपकारी और सम्यग्दृष्टि अभयंकर नाम का व्यापारी रहता है। वह निज हृदय से परमेष्ठी की आराधना करता है।।5-6।। उसकी स्त्री कुशल, व्रतों से पवित्र, जिनधर्म में आसक्त और मिथ्यात्व हीन है।।7।। उसके घर में

धण्णंकर और पुण्णंकर दो भाई कर्मचारी रहते हैं।।8।। बड़ा भाई वहाँ गृहकार्य करता है और छोटा भाई उपवन धन की रक्षा करता है।।9।। दोनों विनीत, सरलचित्त और सेठ अभयंकर के परम भक्त हैं।।10।। दोनों भाई हर्षित मन से सेठ के घर सुखपूर्वक रहते हैं और वार्तालाप करते हैं।।11।। यहाँ पुण्य और पाप में बड़ा अन्तर है। एक से (जीव) सुख (भोगता है) और एक से कष्ट सहता है।।12।। एक रंक है और एक भूपति है (जो) निश्चिन्त होकर रति-सुख आदि भोग भोगता है।।13।। दोनों अपनी स्त्रियों में विषयासक्त हैं। हे भाई! सुख और दुःख कृतकर्मों से होते हैं।।14।। जिसकी निश्चल मति तपश्चरण में होती है (वह) स्वर्गलोक की देवसम्पदा को भोगता है।।15।। इसके पश्चात् मनुष्य पर्याय पाकर तप करता है और कृत-कर्मों को नाश कर शिवपद पाता है।।16।।

घत्ता–एक परिश्रम करके (जिसने) अति पुण्य किया है वह घोड़े, हाथी, रथ, पालकी वाहनों पर चढ़कर पृथ्वी पर क्रीड़ा करता है। योद्धा ध्वजा धारण करके विविध भक्ति के साथ उसके आगे दौड़ते हैं।।1-13।।

(1-14)

धण्णंकर-पुण्णंकर का जीव की दशा और मनुष्यगति के दुःखों के सम्बन्ध में चिन्तन

जीव यदि किसी प्रकार श्रावक-कुल में जन्म प्राप्त कर लेता है (तो वह) जिनेन्द्र के धर्म को नहीं पालता है।।1।। वह मूर्ख जैसे-जैसे संसार भ्रमण करते हुए दुःख पाता है वैसे-वैसे उसे पछताना पड़ता है।।2।। हे भाई! पीछे पछताने से क्या लाभ? जिससे उसमें फँसना न पड़े वह (कार्य) तू आज ही कर।।3।। पानी बाहर निकलने के पहले पार बांधों या बांध की रक्षा करो। सर्प निकल जाने पर अंधा पुरुष ही लकीर पीटता है।।4।। जिन सुखों के पश्चात् दुःख होता है, उन सुखों को ज्यों ही कोई हृदय में धारण करता है, वे सुख अति मिष्ट

आहार के पश्चात् जीमते ही तत्काल होने वाले वमन के समान दिखाई देते हैं।।5-6।। संसार में जीव को सुख मधु की एक बूँद के बराबर और दु:ख मेरु पर्वत के बराबर जानों।।7।। हे भाई! आपने देव, मनुष्य और तिर्यंच गतियों में जो दु:ख सहे हैं उन्हें सम्हालो।।8।। ईर्ष्या, विषाद, माया, क्रोध और मान (आदि के कारण) देवों के विमान से च्युत (होने के सम्बन्ध में) चिन्तन करो।।9।। सप्त धातुओं से निर्मित हुआ हृदय भी फूट जाता है। (उसके) सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं।।10।। छहमास से च्युत होने की चिन्ता होने लगती है। उस समय के दु:खों को मैं कहने में समर्थ नहीं हूँ अथवा कह नहीं सकता हूँ।।11।। जो सेवा करती हुई पंक्तिबद्ध सेविकाओं के समान रहती हैं वे देवांगनाएँ एक-एक कर दूर जाते हुए विलीन हो जाती हैं।।12।। मनुष्य पर्याय में क्षय, खाँसी और श्वांस रोग तथा माता-पिता, पुत्र और बान्धवों का वियोग है।।13।। वध-बन्धन, ताड़न, असि-प्रहार, दरिद्रता और तिरस्कार आदि के अनेक दु:ख हैं।।14।। सभी अंगोपांग संकुचित करके अशुचि पीप के साथ अधोमुख होकर जीव को नौ मास या उससे अधिक समय तक गर्भवास में नरक जैसे सैकड़ों दु:ख होते हैं।।15-16।। दूसरे विरोधी गृहस्थ वहाँ जलते हैं। ईर्ष्या करते हैं। वे सुख के समय सुई के समान चुभते हैं।।17।। यह वेदना गर्भवास-वेदना से आठ गुनी अधिक होती है और जन्म के क्षणों की वेदना तो अनन्त गुनी कही गई है।।18।।

घत्ता—इस प्रकार नरक के समान दु:खों को सहकर बड़ी ही कठिनाई से वहाँ से निकलता है। इसके पश्चात् यह मूर्ख जीव बहु पाप करके तिर्यंचगति को प्राप्त हो जाता है।।1-14।।

(1-15)

तिर्यंच और नरकगति के दु:खों का वर्णन

तिर्यंचगति में (जीव) प्रमुख रूप से परवशतावश अरई आदि कील के नुकीले अंश के छेदे जाने, गलकम्बल आदि के भेदे जाने,

प्रजनन शक्ति के विनाश हेतु अण्डकोश दबाये जाने, कंधे और पुट्टों के ऊपर भार लादे जाने (से उत्पन्न दु:ख) और शीत-ताप तथा भूख-प्यास सहते हैं।।1-2।। अज्ञानी जीव नरक के एक ओर तीन सागर से तैंतीस सागर पर्यन्त बहुत दु:ख सहता है।।3।। वहाँ एक बार में लगातार शीत और एक बार में लगातार ताप सहता है। वज्र के समान मजबूत चोंच वाले डांस दु:ख पहुँचाते हैं।।4।। घनघोर घनों की मार, मुद्गरों के प्रहार और ऊपर से कुल्हाड़ी की तीव्र मार (सहता है)।।5।। करोंत से देह के दो खण्ड कर दिए जाते हैं। कुम्भीकड़ाह में पकाये जाने से प्रचण्ड वेदना (होती है)।।6।। सूखे पत्र के समान चूर-चूर कर दिया जाता है। पापियों को फाँसी के फंदे में पिरोया जाता है।।7।। हाथीदाँत से भेदन कराया जाता है, पैर पकड़कर आकाश में उछलवाया जाता है।।8।। वहाँ गर्म हवाओं से जलते हुए जीव तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों और शाखाओं वाले वृक्षों की छाया का सेवन करते हैं।।9।। नरक प्राप्त हो जाने पर मधु सेवियों के हाथ की अँगुलियाँ, नासिका, ओंठ और कान छिन्न-भिन्न कर दिए जाते हैं।।10।। वेश्यागामियों को अग्नि से तपाई गई लाल वर्ण की (लौह) पुतलियों से बलपूर्वक आलिंगन कराया जाता है।।11।। दूसरों से ईर्ष्या करने वाले और मदिरा पीने वालों को उनका मुँह मोड़कर गला हुआ रांगा जल के रूप में पिलाया जाता है।।12।। वहाँ मांस खाने वालों को क्रोधपूर्वक दोष बताते हुए अंगों का मांस काटकर उनके मुँह पर मारा जाता है।।13।। इस प्रकार नरक वास में मद्य, मांस और मधु तथा परस्त्रीविलास के सेवन से यह फल प्राप्त होता है।।14।। जो अभक्ष्य भक्षण करते हैं, उन्हें वहाँ कर्कश पत्थरी पर हाथ से वैसे ही पछाड़ा और पीटा जाता है जैसे वस्त्र।।15।। पारा जैसे खंड-खंड किये जाने पर भी पुन: मिलकर एक हो जाता है ऐसे ही यहाँ कुकर्म और भोग-विषयों के वशीभूत मनुष्यों का पिंड खंड-खंड होकर भी मिल जाता है।।16।। मिथ्यात्वी और मोही प्राणी चारों गतियों में भ्रमण करते हुए तीक्ष्ण दु:ख सहता है।।17।। अत: गुरुओं

की वाणी मन में ही स्मरण करो। मन में ही पड़ी गुरु-वाणी शिवंकरा होती है।।18।।

घत्ता–दुर्वचन रूपी बाणों से आहत होकर जिसके द्वारा बहुत पर्यायें धारण की गयीं और त्यागी ऐसा मोहासक्त जीव इस प्रकार चारों गतियों की योनियों में भ्रमण करता है।।1-15।।

(1-16)

धण्णंकर-पुण्णंकर भाइयों का सांसारिक-चिन्तन और कर्त्तव्यबोध

बुद्धिमानों ने जीवन, धन और यौवन को अंजुलि के जल के समान अस्थिर बताया है।।1।। नया रखने का यत्न करते हुए भी वह क्षण-क्षण में क्षीण होता है। (संसार में) एक हँसते हुए और एक रोते हुए दिखाई देता है।।2।। मित्रता, प्रभुत्व और इन्द्रिय-विषयों का समय भी क्षणिक है। मृत्यु से घिरे हुए हे जीव! मृत्यु को धर्म से काटो।।3।। कल का दिन कार्य करने को प्राप्त होता है या नहीं (क्या भरोसा) अतः कल करने वाले कार्य को आज (ही) करो।।4।। माता-पिता, पुत्र से सब माया जाल है। उसमें पड़ा हुआ जीव कुटुम्ब का विस्तार करता है।।5।। पाप करते हुए किसी प्रकार की शंका भी नहीं करता और फिर आप अकेला दुःख सहता है।।6।। हे गृहस्थ! उन्हें प्राप्त करता है अथवा निश्चय से नहीं इस ज्ञान के वशीभूत होकर अत्यन्त आसक्ति से उनमें हृदय को न बाँधों।।7।। जैसे परदेशी पथिक उदासीन चित्त से अर्थात् अपना न मानकर (पराये घर में) रहता है ऐसे ही पराया घर मानकर उदासीन चित्त से घर में रहो।।8।। सूर्योदय हो जाने पर वह एक अन्धा ही है जो बाहर निकलकर कन्दरा में गिरता है।।9।। शमशान में सारहीन ध्यान करने वाले के समान कोई भी परमार्थ को नहीं जानता है।।10।। मेरे बिना कुटुम्ब का भरण-पोषण कैसे होगा? ऐसा विचार करके धर्म की प्राप्ति में विलम्ब मत करो।।11।। (वियोग होने पर) एक दो दिन या एक घड़ी

रोकर फिर सभी खाने-पीने लगेंगे।।12।। हे दुःख करने वाले! देह से धर्म हो ऐसा करो, पुद्गल से स्नेह मत करो।।13।। देह अपनी नहीं है, सभी किराये के समान उसे धारण किये हुए हैं, वह धर्म में बाधा पहुँचाता है तो त्याग दो।।14।। जब जीव (चेतन) प्रस्थान करता है तब न समुदाय का सहारा रहता है न मुहूर्त का, न शकुन का और ना शक्ति का भी।।15।। उसे जाते हुए बलपूर्वक कोई पकड़ नहीं पाता। जो भी आता है रो-रोकर उठ जाता है (चला जाता है)।।16।। युद्धक्षेत्र में कायर बैरी के वश में होकर मर जाते हैं परन्तु (उनकी) कीर्ति नहीं होती है।।17।। जो योद्धा शूरवीरतापूर्वक मरता है वह सुयश से परिपूर्ण होकर महान् पुरुषों के द्वारा पूजा जाता है (आदर पाता है)।।18।। संसार में अपना कोई नहीं है। लेन-देन तक ही मिलन-संयोग है।।19।। जीव कुटुम्ब रूपी भँवर के गर्त में पड़ा हुआ है। सूकर के समान प्रभुता मानता है।।20।। कुटुम्ब बांधने को सांकल स्वरूप है। उस सांकल (जंजीर) को शीघ्र उतारो और मृत्यु पर विजय करो।।21।। आशाओं और इन्द्रिय-वासनाओं में पड़े हुए हे मन! तू संसार में संयम लेकर अपने को तारो-तारो (अपना कल्याण करो। भवसागर से तर जाओ)।।22।।

घत्ता—हे जीव! (तू) कौटुम्बिक भलाई के लिए अनेक पाप करता है। शीत और ताप को सहता है। अपने मरण का भी मन में विचार नहीं करता किन्तु अपने चेतन की भलाई के लिए (कुछ) नहीं करता है।।1-16।।

(1-17)

जीव की कौटुम्बिक स्थिति, कर्म, पुण्य-पाप का स्वभाव तथा सम्यग्दर्शन धारण करने का परामर्श

कर्मराज जीव का अधिकारी है। वह अपराधियों के पास जाकर उन्हें घेरता है। उन पर आघात करता है।।1।। वह कुटुम्ब रूपी बन्दीघर में बन्द करके आघात करता है। उस समय विद्याधर बाली

भी रक्षा नहीं कर सकता है।।2।। पत्नी बाहु-दण्ड रूपी गले की सांकल है और पुत्र प्रेम रूपी पैरों में प्रचण्ड बेड़ी है।।3।। मित्र, माता-पिता और भाई रूपी हाथों में हथकड़ियाँ हैं। मूर्ख जीव शक्ति पाकर भी इस जेल से मुक्त नहीं हो पाता है।।4।। लोक में मुनियों के वचन हैं कि कर्म योग से अर्थात् उद्यम करने से बंधियों की सांकल टूटकर झड़ जाती है।।5।। (अत:) अरिहंत के मार्ग में पुरुषार्थ करो। शक्ति पाकर कायरपन में मत पड़ो। कायर मत बनो।।6।। ज्यों-ज्यों यह देह सुख का अनुभव करती है त्यों-त्यों अधिक दु:ख जानो।।7।। यदि देह दु:ख सहता है तो जानों कि पापों का क्षय करके यह पुण्य प्राप्त करता है।।8।। इस प्रकार संसार को वक्र और अस्थिर जानकर संयम को धारण करके अपने को पापों से मुक्त करो।।9।। क्रोध आदि चारों कषायों का त्याग करके पंचेन्द्रिय विषयों के प्रसार का निवारण करो।।10।। बाह्य और आभ्यन्तर तप करके कर्मों की निर्जरा और पुण्य का संचय करो।।11।। अथवा यदि चारित्र का पालन नहीं कर सकता तो श्रावक के धर्म में चित्त दृढ़ रखो।।12।। मनुष्य क्षेत्र के आर्यखण्ड में विद्यमान मनुष्यों के अच्छे कुल और पंचेन्द्रियत्व को पाकर गुरु के द्वारा गृहीत जो मार्ग है वह प्राप्त करके एक चित्त से शुद्ध जैनधर्म का पालन करो।।13-14।। हे जीव! यह न जानो कि यह मनुष्य देह और श्रावक के कुल में प्रवेश फिर प्राप्त कर लोगे।।15।। समुद्र के बीच में गिरा हुआ चिंमामणि रत्न देखो फिर कैसे प्राप्त होता है?।।16।।

घत्ता–(अत:) प्राणप्रिय पच्चीस दोषों से रहित, आठ गुण और आठ अंगों से सहित अकेले इस सम्यग्दर्शन को मन में धारण करो।।1-17।।

(1-18)

सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व-वर्णन

धर्म वह है जिसका मूलाधार दया है, देव-अर्हन्त हैं और सुगुरु

निर्ग्रन्थ साधु। इन सात तत्त्वों पर श्रद्धा करो।।1।। गुरु-वाणी को जानों। मिथ्यात्व मार्ग में और कुगुरु तथा कुदेव के पीछे मत लगो।।2।। चारित्र से भ्रष्ट मुनीन्द्र और कुल के मार्ग से च्युत होकर भी श्रावक सिद्धि प्राप्त कर लेता है।।3।। किन्तु सम्यक्त्व-विहीन सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाता। अतः जिससे (सम्यक्त्व हो) ऐसे एक अर्हन्त को मन में धारण करो।।4।। शीतला माता, गो-माता, नादिया बैल, चामुण्डा और चण्डी देवी, क्षेत्रपाल और विनायकदेवों को प्रमुख रूप से त्यागो।।5।। गणगौर और वत्सवारसा आदि में विश्वास करने के फलस्वरूप नरक-वास प्राप्त करता है। (होता है)।।6।। वरसा और कुलदेवता आदि में श्रद्धा करने से सम्यक्त्व आधा घट जाता है।।7।। जो देव संसार-चक्र में रमता है उनकी सेवा मुक्ति का कारण कैसे (हो सकती) है?।।8।। जो सपरिग्रही गुरु अपने ही भार से डूब रहा है वह गुरु दूसरों को कैसे पार लगा सकता है?।।9।। जिस धर्म में जीवों का घात होता है उस धर्म से संसार से पार होना कैसे प्राप्त होता है? (अथवा कैसे संभव है)।।10।। इतर धर्मों की कुचर्चा और निन्दा को टालकर अपने कुलधर्म का भली प्रकार पालन करो।।11।। चाण्डाल का कार्य भी करना पड़े तो वह भले ही भली प्रकार कर लो परन्तु परनिन्दा न करो और न दूसरों के मरण का कारणभूत वचन या गुप्त बात कहो।।12।। पर-चिन्तन से अनन्त संसार और आत्म-चिन्तन से परमपद प्राप्त होता है।।13।।

घत्ता—अष्ट मूलगुणों का पालन करते हुए सप्त व्यसन का त्याग कीजिए और निर्मल सम्यग्दर्शन पूर्वक पहली प्रतिमा धारण कीजिए।।1-18।।

(1-19)

सप्त व्यसन, अनन्तकाय, अभक्ष्य और अकर्तव्य विचार-विमर्श

इस प्रकार जान करके जो आचरणीय है उनमें संलग्न हो जाओ। राग दोष से चित्त दूषित मत करो।।1।। सप्त नरक प्राप्ति की

कारण जानकर इन जुआ आदि सातों व्यसनों को त्यागो।।2।। बाईस अभक्ष्य और बत्तीस अनन्तकाय को भी छोड़ो। वे बहुत हानिकारक हैं।।3।। मधु (शहद), मद्य (मदिरा), मांस, मक्खन, गाजर-मूली कंदरुआ आदि (जमीकन्द), राख-माटी मत खाओ।।4।। सूरन, पिडालू और पिंग जाति के पदार्थ, बैंगन तथा रात्रि-भोजन छोड़ो।।5।। घोल, बड़ा (दही-बड़ा) संधान, अचार और द्विदल पदार्थ जानकर लोग कैसे जीमते हैं? (जीमेंगे)।।6।। कच्चे दूध को जमा कर बनाये गए दही में द्विदल पदार्थों का मिश्रण द्विदल कहलाता है। उसे खाने में यति पाप बताते हैं।।7।। पाप से नरकवास जानों। वहाँ भी महान दु:ख से (जीव) पकाया जाता है।।8।। अनछना पानी, नहाने-धोने में लेने से जीव जलचर-योनि प्राप्त करता है।।9।। नियम लेकर प्रत्याखन करके, णमोकार मंत्र हृदय में धारण करो।।10।। विकथाओं को टाल कर प्रतिक्रमण, सामायिक और प्रोषध व्रत को सम्हालो।।11।। जीवों के द्वारा जो धन खेत (सप्त क्षेत्र) में बोया जाता है वह परलोक का सम्बल जानों।।12।। वर और वधु दोनों पक्ष के जो लोग फिर विवाह आदि में व्यय करते हैं वे इस भव में और आगामी भव में मानसिक व्याधियाँ पाते हैं।।13।। दया करके झूठ मत बोलो। पराये धन को तृण सम तथा परस्त्री को माता के समान (समझो)।।14।। धन-धान्य और खेत आदि परिग्रह का प्रमाण करो। कम-ज्यादा तौलना-मापना छोड़ो।।15।। जिनेन्द्र ने इस प्रकार धर्म का संक्षिप्त स्वरूप कहा है। उसकी आराधना करो जिससे कि क्लेश (दु:ख) टूटते हैं। नष्ट हो जाते हैं।।16।। सम्पदा पुण्य के योग से प्राप्त हुई है। प्रमाद करोगे तो शोक में पड़ोगे।।17।। जैनधर्म के बिना न इन्द्र-सुख होता है और न ही मोक्ष।।18।। ये ही परम अक्षर हैं और ये ही परम मंत्र हैं। हे भाई! मिथ्यात्व के वचनों में मत पड़ो।।19।।

घत्ता—हे जीव! तू मिथ्यात्व का परित्याग कर जिससे कि संसार भ्रमण टूटे, समाप्त हो और मनुष्य पर्याय तथा स्वर्ग के सुख प्राप्त करके मोक्ष का द्वार प्राप्त करो।।1-19।।

(1-20)

धण्णंकर-पुण्णंकर का निजात्मा चिंतन, अभयंकर के उनके प्रति सद्विचार और मुनि विश्वकीर्ति द्वारा श्रावक-धर्म वर्णन

इस प्रकार दोनों भाई वहाँ (अभयंकर के घर) विचारते हैं कि हम जैनधर्म में रहकर भी निकम्मे हैं (आत्मकल्याण के लिए कुछ नहीं करते)।।1।। इस लोक में यह व्यापारी अभयंकर सेठ धन्य है, जो प्रतिदिन मुनि को (आहार) दान देता है।।2।। अष्ट द्रव्य लेकर विधिपूर्वक जिनेन्द्र की पूजा करता है। मनुष्यों को काम देकर जीवों का पोषण (रक्षा) करता है।।3।। वह साधर्मियों पर वात्सल्य (भाव) स्नेह करता है, हृदय से हजारों जीवों पर दया करता है।।4।। अर्हन्त देव के सिवाय किसी अन्य देव को नमन नहीं करता। जिनेन्द्र के वचनों को व्रतों को अथवा जो धारण करते हैं वह उनका सेवक है।।5।। हम पुण्यहीन हैं, जो धर्म त्यागकर बहु पाप रूपी पंक के नीचे निमग्न हैं।।6।। जैनधर्म रूपी कील (का सहारा लिए वहाँ से) नहीं निकलता है।।7।। ऐसा विचार करके जैनधर्म में नत (वे दोनों) तल्लीन चित्त से शुभ ध्यान में बैठ जाते हैं।।8।। वे किसी भी प्रकार से वहाँ प्राणियों को नहीं दुखाते। व्यापारी सेठ अभयंकर के यहाँ (ही) क्रीड़ा करते हैं।।9।। उनके सम्बन्ध में (एक) दिन सेठ ने विचार किया कि ये दोनों (भाई) भव्य हैं, जिनेन्द्र के भक्तों में मणि के समान श्रेष्ठ हैं। (इनके कल्याण का) उपाय करता हूँ और क्षण भर में (भव-सागर से) पार लगाता हूँ।।10-11।। जिससे इन्हें देव-पद प्राप्त हो, वह जो पूर्व अर्जित अशुभकर्म रूपी मल को काटता है।।12।। किसी दूसरे दिन विचार करके सेठ दोनों भाईयों को तत्काल लेकर चैत्यालय गया।।13।। काम रूपी दुर्वृक्ष को काटने के लिए कुठार स्वरूप सारभूत मुनि विश्वकीर्ति को प्रणाम किया।।14।। भव्य जनों को संसार-सागर से तारने वाले और स्याद्वाद-वाणी के विचारक, धर्मध्यान के लिए मौन पूर्वक स्थित वे मुनिराज शंका

विहीन होकर श्रावक-धर्म पालने को प्रेरित करते हैं।।15-16।। (वे कहते हैं कि) कर्म-मल को दूर करने वाले ब्रह्मचर्य को पालो, त्रिकाल सामायिक करो, सुखकारी प्रोषध उपवास करो और अभिषेक तथा विलेपन पूर्वक जिनेन्द्र की पूजा करो।।17-18।।

घत्ता–शिव-पद प्रदायी दश लक्षण पर्व (धारो), चारों प्रकार के दान दो, प्राणियों पर दया करो, आगम-ग्रंथ सुनो, यही श्रावक धर्म की विधि है। पालन कीजिए।।1-20।।

(1-21)

पूजा में पर द्रव्य-व्यवहार सम्बन्धी धण्णंकर-पुण्णंकर के विचार तथा मुनि विश्वकीर्ति का उपदेश

कहा भी है–जिसके प्रभाव से धर्म विहीन श्रावक धर्ममय हो जाते हैं वह वर्षगांठ महोत्सव जिसके द्वारा चातुर्मास के पर्वों में मनाय जाता है। वह जयवन्त हो।

दोहा–ऐसा विशुद्धमति मुनि विश्वकीर्ति से सुनकर उस व्यापारी अभयंकर सेठ के द्वारा दोनों कर्मचारी भाई नहलाये गए। क्योंकि-स्नान में दस गुण होते हैं।

(1) मानसिक प्रसन्नता का उत्पादक (2) अशुभ स्वप्नों का विनाश (3) शोकहारी (4) मलिनता को दूर करने वाला (5) तेज-संवर्द्धक (6) सौन्दर्य का उद्योतकर (7) सिर के लिए सुखकर (8) कामाग्नि का उत्तेजक (9) स्त्रियों का मन्थन-मोहन और (10) श्रमहर।

सेठ अभयंकर दोनों भाइयों का स्नान कराकर और चन्द्रमा के समान श्वेत उज्ज्वल वस्त्र पहनाकर तथा बहुमूल्य अष्ट द्रव्य लेकर जहाँ रत्नमयी श्रेष्ठ प्रतिमा (थी वहाँ) गया।।1-2।। जाते हुए सेठ कर्मचारियों को पूजा में चढ़ाने के लिए सुन्दर और स्वच्छ फूल ले लेता है।।3।। वहाँ वह आधे फूल कर्मचारी भाइयों को देता है। (किन्तु) वे भव्य दोनों भाई पर द्रव्य और वस्त्र नहीं लेते हैं।।4।। सेठ

(उनसे) पूछता है (द्रव्य) क्यों नहीं लेते? मेरे मन में आश्चर्य और सन्देह (प्रकट हो रहा) है।।5।। वे भाई कहते हैं (हे सेठ) यदि हम आपके फूल लेते हैं तो इससे आपका पुण्य होता है हमारा नहीं।।6।। हमने झूठ नहीं कहा है। जिनेश्वर की परम-ज्योति पर हमारी वज्र के समान दृढ़ प्रीति है।।7।। भोजन के समय जो नैवेद्य (पकवान) का सेवन करता है उससे ही शरीर में तृप्ति होती है (सभी को तृप्ति प्राप्त नहीं होती)।।8।। धर्म और अधर्म में यही भेद है। जो पुण्य कार्य करता है वही परम तृप्ति को पाता है।।9।। यही कारण है कि हे सेठ! हम पर द्रव्य नहीं लेते। अपने स्थिर मन से जिनेन्द्र की आराधना करते हैं।।10।। ऐसा सुनकर सेठ को दु:ख उत्पन्न हुआ। (वह विचारता है कि) ये भाई भव्य हैं, शुद्ध भाव वाले हैं, (इनके) मन में जिनेन्द्र (विराजमान) हैं।।11।। मन, वचन और काय से पर-वस्तु का त्याग करके भक्त ये दोनों भाई भवसागर से शीघ्र पार हो जाने वाले हैं। उस पार निकल जाने वाले हैं।।12।। जैनधर्म पर जिन्होंने चित्त लगाया है उन दोनों भाइयों को वह सेठ यतिवर विश्वकीर्ति के पास ले गया।।13।। कहा है—बहुत मान-सम्मान सहित वन्दना करना, गुण-स्तुति करना, उपसर्गों का (निवारण कराना), दोषों का गोपन करना और उपकार के लिए गुरु को दान देना इस प्रकार गुरुपूजा पाँच प्रकार की होती है।

सेठ अभयंकर बार-बार गुरु से कहता है हे मुनिवर! ये दोनों भाई निश्चय से मेरी द्रव्य से जिनेन्द्र को नहीं पूजते हैं। हे साधु इन भव्य (पुरुषों से) इसका कारण पूछो।।14-15।। ऐसा सुनकर तीन ज्ञान के धारी, शील की खदान गुरु अमृतमयी वाणी से कहते हैं—हे कर्मचारी भाई! निजनाथ को पूजो।।16-17।। जिससे जीव सुरेन्द्र, नरेन्द, नागेन्द्र पद पाता है, दुर्गति को हरने वाली जिनेन्द्र की पूजा तुम क्यों नहीं करते।।18।। ऐसा सुनकर धण्णंकर और पुण्णंकर भली प्रकार प्रत्युत्तर स्वरूप कहते हैं—हे स्वामी! निज द्रव्य से हम फूल लेते हैं और जिनेन्द्र की पूजा तथा स्तुति करते हैं।।19-20।। ऐसा सुनकर

यति विश्वकीर्ति कहते हैं–हे भव्य! यदि तुम्हारे पास कुछ द्रव्य है तो (पूजा) करो।।21।।

घत्ता–उन दोनों कर्मचारियों में एक कर्मचारी ने मधुर वाणी से कहा–हे यति! मेरे (पास) पाँच कोड़ियाँ हैं। हे विद्वान् मुनि! उन कौड़ियों के मूल्य से अमूल्य पुण्य कैसे प्राप्त कर सकता हूँ।।1-21।। गुरु ने कहा–जल में तैल, दुष्ट पुरुष को कथित रहस्य, सत्पात्र को दिया गया किंचित् दान और बुद्धिमान को दिया गया शास्त्र स्वयमेव ही सुशक्ति से फैल जाते हैं।

कहा भी है–जिसके (पास) धन होता है वही मनुष्य कुलीन, वही पंडित, वही श्रुतज्ञ और वही गुणवान तथा वह ही वक्ता और दर्शनीय होता है। यथार्थ में सभी गुण द्रव्याश्रित हैं अथवा द्रव्य का आश्रय लेते हैं।।छ।।

(1-22)

धण्णंकर-पुण्णंकर का विश्वकीर्ति मुनि से व्रत-ग्रहण तथा चारण युगल को आहार-दान एवं पुण्य-महिमा

ऐसा सुनकर दूसरा भाई कहता है–मैं द्रव्य-हीन हो गया हूँ, क्या करूँ।।1।। मैं एक कौड़ी भी उत्पन्न नहीं करता हूँ अर्थात् मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। हे गुरु! तीन लोक के स्वामी की मैं कैसे पूजा करूँ, उन्हें कैसे पूजूँ।।2।। मुनि ने दूसरे (इस निर्धन) भाई से कहा–यति से पापहारी व्रत ग्रहण करो।।3।। वह भव्य पुरुष यह सुनते ही अति सुखी हुआ। उसने चारों प्रकार के आहार (त्याग) का नियम किया (लिया)।।4।। इसके पश्चात् वे दोनों भाई मतिमान गुरु से कहते हैं दूसरे प्रकार से यह कैसे होता है?।।5।। मुनि कहते हैं–इस चातुर्मास में आष्टाह्निक नन्दीश्वर पर्व में पाप-मैल को दूर करने वाले निर्मल व्रत को कीजिए, जिनेन्द्र की पूजा और तप करो।।6-7।। मुनि से ऐसा सुनकर मन-वचन और काय से वे दोनों भाई अपने गुरु के पास उपवास में बैठ गए।।8।। जिसकी आराधना से देव और मनुष्य

मोक्ष पाते हैं उस णमोकार मंत्र को वे दोनों भाई एकाग्रचित्त होकर जपते हैं। मंत्र की आवृत्ति करते हैं।।9।। सूर्योदय होने पर वे दोनों अपने सेठ (अभयंकर) के साथ गए। उन्होंने स्नान और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल श्वेत वस्त्र धारण करके पाँचों कौड़ियाँ वहाँ (सेठ को) देकर तथा सहर्ष (सेठ से) सुगन्धित सुन्दर-स्वच्छ फूल लेकर जिनेन्द्र देव, जिनवाणी और गुरु की पूजा-स्तुति करके सामायिक करने के पश्चात् भोजन का समय होने पर सेठ के साथ वे दोनों भाई पकवान खाने बैठे।।10-13।। सेठानी छहों रसों से युक्त, क्षुधा का दमन करने वाला भोजन लेकर और ज्ञानी, भव्य उन दोनों भाईयों को लोक में किए अपने पुण्य से परोस कर (भव सागर से) पार हो जाती है (भव सागर से पार होने का बन्ध कर लेती है)।।14-15।। वे निर्मल परिणामी भाई तब विचारते हैं–यदि कोई भी पात्र आकर मिल जाता है तो उनके चरणों की वन्दना करके यह भोजन उन्हें दें।।16-17।। ऐसा चिन्तन कर वे भाई मोक्ष-सुख के समान सुख की उपाय स्वरूप (सोलह) भावनाओं को भाते हैं।।18।। उनके पुण्य से कामजयी तप रूपी तेज से सूर्य स्वरूप दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आते हैं।19।। उन सिद्ध यतियों के दर्शनार्थ देव आते हैं। वे गुरुओं को अपने नृप इन्द्र के समान किन्तु यश से पृथक्/भिन्न विचारते हैं/मानते हैं।।20।। जिनका पृथ्वी पर द्रव्य और वंश नष्ट हो जाता है वह पुण्य-क्रियाओं से प्राप्त कीजिए।।21।। किये हुए पुण्य के प्रसाद (प्रभाव) से भव्य जीव (भव-सागर से) तर जाता है, सम्पत्ति हो जाती है।।22।। बिना पुण्य के जीव सुख नहीं पाता। किन्तु पाप से बहुत दुःख पाता है।।23।। दुःख से मन में अतीव सोच-विचार को (चिन्ता) प्राप्त होता है और सोच-विचार से (शारीरिक) क्षीणता उत्पन्न होती है।।24।।

घत्ता–उन निर्मल परिणामी दोनों भाइयों ने अपनी-अपनी सम्पूर्ण भोजन-सामग्री से युक्त थाली शीघ्र युगल चारण मुनियों को दे दी। स्वामी (आहार लेकर) दोनों चारण मुनि आकाश में चले गए।।1-22।।

अनुवाद

यह महाराज श्री अमरसेन का चरित्र चारों वर्ग (वर्ण) को रसों से भरपूर, सुकथनीय कथाओं से युक्त है। पण्डितमणि श्री माणिक्ककवि के द्वारा सेठ महणा के चौधरी देवराज नामधारी पुत्र के लिए रचा गया है। इस ग्रन्थ का धण्णंकर-पुण्णंकर को धर्म-लाभ, उनके वैराग्य-भाव और मुनियों के दान प्रदान का वर्णन करने वाला प्रथम परिच्छेद पूर्ण हुआ।।सन्धि।।1।।

जो सम्पूर्ण साधु जनों में गाम्भीर्य, धैर्य, सम्पूर्ण अर्थ और अतीव गुणों से नित्य सुशोभित होता है, श्री जैनशासन रूपी समुद्र की वृद्धि के लिए चन्द्र स्वरूप वह श्रीमान् देवराज संसार में सदैव आनन्दित रहे। यही आशीर्वाद है। कहा भी है–

हंस सर्वत्र श्वेत और सिंह सर्वत्र चिन्तनीय, तथा बड़ों के समान आचरणशील (होता है)। जन्म-मरण सर्वत्र है और भोजन में उपभोग्य पदार्थ सर्वत्र (हैं)।।1।।

❑❑❑

द्वितीय परिच्छेद

(2-1)

धण्णंकर-पुण्णंकर का चतुर्विध आहार त्याग और समाधि-मरण वर्णन

ध्रुवक

हे शत्रुओं को डसने वाले श्रेणिक! अति दीर्घबाहु राजकुमारों के सम्बन्ध में तुम्हारे हुए संशय का नाश करता हूँ और आगे (क्या हुआ) कहता हूँ।।छ।।

मन-वचन और काय से शुद्ध, पुण्यवान, कल्याणकारी, अशुभघाती दोनों भाइयों को तब सेठ ने जाकर उपयुक्त वस्त्र धारण करके भोजन करो, कहा।।1-2।। जो चारण मुनियों को तुम दोनों ने दान दिया है। तुम लोगों के समान अन्य दूसरे को नहीं जानता हूँ।।3।। वे भव्य (भाई) कहते हैं। हे सेठ! सुनों हम भोजन नहीं करते हैं (करेंगे)।।4।। हमारे सम्पूर्ण शरीर में संतोष उत्पन्न हुआ है। हे भाई! हमें भोजन नहीं भाता है।।5।। ऐसा सुनकर सेठ तत्काल कहता है–हे पूज्य! साधर्मियों से स्नेह/प्रीति करिये।।6।। हे मित्र! यदि इस प्रकार भोजन करना है तो सहर्ष चित्त से भोजन करो।।7।। सेठ के इस कथन को सुनकर वे दोनों भाई कहते हैं–हम अपने बाहुबल से उपार्जित भोजन ही निश्चय (करेंगे)।।8।। जो वचन (हम) बोलते हैं, (इसी प्रकार) जो व्रत भली प्रकार बोला जाता है/ग्रहण किया जाता है, उसे कैसे भी त्यागना नहीं चाहिए।।9।। हमारा चारों प्रकार के आहार का सूर्योदय में ही आहार करने का कल्याणकारी नियम है।।10।। उनके वचन सुनकर सेठ ने भली प्रकार कर्मचारी भाईयों से विनय/प्रार्थना की।।11।। षष्ठोपवास की रात्रि में माथे पर विधाता ने जो अक्षरमाल लिख दी है (वह) स्थिर है।।12।। भाग्य के द्वारा लिखाया गया और विधि द्वारा लिखे गए को कोई भी बदलने को

समर्थ नहीं हुआ।।13।। जीव यदि पर्वत की चोटी चढ़ जाता है, भयभीत होकर समुद्र लांघकर पाताल में चला जाता है तो भी विधाता की लिखी अक्षर पंक्ति (लेख) मनुष्य, देव और नागेन्द्र को भी फल देती ही है।।14-15।। यम से भयभीत होकर यदि जीव विदेश भी चला जाता है (तो भी) किसी प्रकार से भी मरणकाल नहीं छूटता है अर्थात् मरण काल अपने निश्चित समय पर आता ही है।।16।। जैसे शरीर की छाया शरीर का अनुसरण करती है। हे भाई! ऐसे ही वह शरीर के पीछे लगा हुआ है।।17।।

घत्ता–धण्णंकर और पुण्णंकर दोनों कर्मचारी भाइयों ने शुभ (सोलह कारण) भावनाओं को भाते हुए तथा जिससे मनुष्य और देव पद होता है उस नौ पद वाले णमोकार मंत्र जपते हुए समाधिमरण किया।।2-1।।

(2-2)

सनत्कुमार-स्वर्ग से चयकर राजा सूरसेन के युगल पुत्र के रूप में धण्णंकर-पुण्णंकर का जन्म-वर्णन

वे दोनों भाई सनत्कुमार स्वर्ग में जाकर उप्पादशिला पर जन्म प्राप्त करके विभ्रम में पड़ जाते हैं (वे यह नहीं समझ पाते कि) दस दिशाओं में कहाँ से किस पुण्य से आये हैं। यह कौन स्थान है।।1-2।। इस प्रकार विचार करते ही उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। इस ज्ञान से (उन्होंने) सब कुछ जान लिया।।3।। सात सागर की श्रेष्ठ आयु को भोगने के पश्चात् अप्सरा के समान सुन्दर देह त्याग करके (राजा सूरसेन की रानी विजयादेवी के गर्भ में आये)।।4।। इस जम्बूद्वीप का (एक) भरतक्षेत्र है। उसमें प्रसिद्ध कलिंग देश स्थित है।।5।। उस देश में दलवट्टण नाम का पत्तन नगर है। (उसके) द्वार-दरवाजे से बहुत सेना घूमती-फिरती है।।6।। नगर में वट वृक्ष दिखाई देते हैं। उस नगर में हिंसक (भी) हिंसा नहीं करते हैं।।7।। चार गोपुरों से वही ऐसा प्रतीत होता है मानों चतुर्मुख ब्रह्मा हो।

उज्ज्वल तीनों कोट ईश्वर के द्वारा रचे गए प्रतीत होते थे।।8।। वहाँ बैरी रूपी पर्वत के बैरियों के सिर स्वरूप शिखरों को तोड़ने के लिए वज्रदण्ड स्वरूप प्रचण्ड सूरसेन नृपति है।।9।। उस राजा के अन्तःपुर की ज्ञानवान विजयादेवी प्रधान रानी है।।10।। इसी राजा के शासन के अन्तर्गत कुरुदेश (कुरुक्षेत्र) है (उसमें) धन-धान्य से परिपूर्ण गजपुर (हस्तिनापुर) नाम का (नगर है)।।11।। वहाँ अतिबलशाली देवदत्त राजा देवश्री भार्या में मग्न रहता है।।12।। निज तेल से जिसके द्वारा सूर्य भी जीत लिया गया है (वह) पृथ्वी पर सभी राजाओं के द्वारा पूजा जाता है।।13।। गजपुर के राजा को मन में सूरसेन अच्छा लगता है।।14।। उसने उस राजा (सूरसेन) को देश, घोड़े, हाथी, चँवर, छत्र और कोष देकर संतुष्ट किया।।15।। वहाँ राजा सूरसेन जब तक रहता है उसके साथ विजयादेवी रहती है।।16।। बुद्धि से बृहस्पति के समान, हजारों प्राणियों पर दया करने वाला वह राजा भोगों को भोगता है।।17।। उसी समय पूर्व कृत भावनाओं के द्वारा और चारण ऋद्धिधारी युगल मुनियों को (पूर्वभव में) दान दिये जाने से धण्णंकर और पुण्णंकर दोनों क्रम से विजयादेवी के गर्भ से ऐसे उत्पन्न हुए–आये मानों नारायण और प्रतिनारायण, लव और कुश या इन्द्र और प्रतीन्द्र अवतरित हुए हों।।18-20।।

घत्ता–पूर्वभव में जिनेन्द्र की पूजा करने से पृथ्वी पर उन भाइयों ने उत्तम जन्म पाया। गर्भ में नौ महीने रहकर वे युगल रूप में होकर उत्पन्न होते हैं।।2-2।।

(2-3)

अमरसेन-वइरसेन का नामकरण, जन्मोत्सव एवं शैक्षणिक वर्णन

राजा के कामदेव के समान सुन्दर पुत्रों का शुभ दिन, शुभ मुहुर्त और पुण्य लग्न के समय में जन्मोत्सव मनाया गया। राजमहल की स्त्रियों के द्वारा मंगल गीत गाए गए।।1-2।। राजद्वार पर तोरण बाँधे

गए, भाटों की स्त्रियाँ विरुदावलियाँ गाती हैं।।3।। भाँति-भाँति की ध्वनि करने वाले बहुवाद्य बजाये गये। विलासिनी स्त्रियाँ अति सराहना करती हुई नाचती हैं।।4।। दु:खी और दरिद्री जनों का दान से पोषण किया गया। वस्त्र और आभूषणों से आत्मीयजन या सज्जन संतुष्ट किये गये।।5।। (राजा ने) बड़े पुत्र का नाम अमरसेन और छोटे पुत्र का नाम वइरसेन रखा।।6।। सभी जन धन्य हैं-कहते हैं। इस प्रकार के बालक पुण्यात्मक आशीषों से बढ़ते हैं)।।7।। माता-पिता स्नेह प्रकट करते हैं। स्वजन बालकों को मुस्कराते मुँह से अनुरंजित होते हैं।।8।। स्त्रियों के द्वारा हाथों हाथ ले जाये जाते हैं। बालक माता के स्तन से खेलते हैं।।9।। इसके पश्चात् माता-पिता के द्वारा परामर्श किया गया, अधिक लाड़ में उन्हें अधिक दोष ज्ञात हुए।।10।। (अत:) उन्होंने शीघ्र शुभ मुहुर्त और शुभ योग में विधिपूर्वक (बालक) उपाध्याय को समर्पित किये।।11।। इसके पश्चात् बहुत ज्ञान के भण्डार उपाध्याय ने बालकों को ग्रहण करके यश-श्री की कामना से (पढ़ाया)।।12।।

घत्ता—उन्होंने अ इ आदि समस्त स्वर, कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-तवर्ग और पवर्ग, समस्त छन्द, अक्षर, भेद, संस्कृत और प्राकृत की विधियाँ देशी समस्त लिपियाँ और गणित का विस्तार तथा संकोच प्रकट किये। सिखाये।।2-3।।

(2-4)

अमरसेन-वइरसेन का विद्याभ्यास एवं वनक्रीड़ा-वर्णन

गुरु के द्वारा भव्य उन कुमारों को समझाये गए (काव्य के विविध) अंग-लक्षण, अलंकार, विभक्ति, लिंग, संधि, समास, व्याकरण और भाषा के अनेक भेद, तर्क वैसे ही प्राप्त हो गये, जैसे आकाश में घूमने के पश्चात् चक्र चक्री को प्राप्त हो जाते हैं।।1-3।। गुरु ने परम सत्य, छह द्रव्य और इसके पश्चात् सात तत्त्व बतलाये।।4।। अमरसेन और वइरसेन धर्म, अर्थ और काम तीनों वर्गों तथा दोनों नय

समग्रतः जानकर आगम, शास्त्र मणि, मंत्र, तंत्र, अपूर्व औषधियाँ, उनके अनुपान, यंत्र, गन्धर्व, गीत नृत्य भेद, अश्व-गज आदि अनेक वाहन-विधियाँ और सम्पूर्ण निर्दोष विद्याकोश सीख करके घर आये।।5-8।। राजा और स्वजन तथा पुरजनों को प्रिय वे दोनों दोज के चन्द्रमा की कलाओं के समान बढ़ते हैं।।9।। यौवन-श्री से शरीर सम्पन्न होने पर वहाँ बहुत प्रकार की कला और विज्ञान सीखकर उन दोनों के द्वारा अपने देह-सौंदर्य से कामदेव वैसे ही जीत लिया गया जैसे जैनधर्म में शुद्ध भावों से कामदेव को जीत लिया जाता है।।10-11।। वे दोनों राजकुमार घोड़ों पर बैठकर सुखपूर्वक वनक्रीड़ा को जाते हुए ऐसे लगते हैं मानों नागकुमार ही जा रहे हों।।12।। राजा के राज्य रूपी धुरों को धारण करने वाले, सुख की खदान वे दोनों राजकुमार राजा और नगर-वासियों का अमृतोपम-मीठी वाणी से अनुरंजन करते हैं।।13।।

घत्ता—वहाँ शास्त्रों के अर्थ की व्याख्या करने में कुशल, गुण-रत्नाकर अमरसेन और वइरसेन दोनों पराक्रमी भाई प्रतिदिन माता-पिता के चरणों में वन्दन करते हैं।।2-4।।

क्योंकि कहा है—शैशव अवस्था में विद्याभ्यास, यौवन में विषय-भोग, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति तथा अन्त में योगी के समान शरीर का त्याग करें।।1।।

विद्वान और राजा की कभी तुलना नहीं की जा सकती। राजा अपने देश में ही पूजा जाता है (जबकि) विद्वान् सर्वत्र सम्मान पाता है।।2।।

।।गाथा।। विधाता के द्वारा नये यौवन और महान् रूप-सौंदर्य से कामदेव के समान रचे गए वे दोनों कुमार स्त्रियों के मन में हिये के हार स्वरूप निर्मित किए गए थे।।3।।

(2-5)

गजपुर की रानी देवश्री का अमरसेन-वइरसेन को मारने का माया जाल तथा राजा देवदत्त का रानी को सान्त्वना देना

शत्रुओं को अजेय वे दोनों कुमार निज ज्ञान से जन-जन का अनुरंजन करते हैं और सुखपूर्वक रहते हैं।।1।। इसी बीच राजा की प्राणों से अधिक प्रिय एवं विश्वासपात्र अपनी सौतेली माता के द्वारा कुमारों का पराक्रम देखा गया। वह दुष्ट उन कुमारों के पराक्रम को सहन नहीं कर पाती है।।2-3।। दुष्टा दोनों भाइयों के करोंत से दो टुकड़े कराकर राजा से मरवाने का विचार करती है।।4।। इन पर उसने मिथ्या दोष लगाया और शीघ्र ही इनसे वह रूठ जाती है, खाना नहीं खाती है।।5।। वह विचारती है जैसे सूर्य की तेज गति के आगे पतंगे क्या कर सकते हैं ऐसे ही इन कुमारों के आगे मेरा पुत्र क्या कर सकता है।।6।। अति बलशालियों को इन्द्र पूजता है। इनके तेज की किससे उपमा की जाय।।7।। ऐसा विचार कर कुमारों के दु:ख देने की शल्य के दु:ख वह संचित घर में बैठ जाती है।।8।। इसी बीच सूरसेण गजपुर-नरेश की सेवा में गया और नरेश की क्रीड़ा में पहुँचा।।9।। वहाँ राजा (देवदत्त) क्रीड़ा करके घर आया। दुष्ट रानी स्मरण करके शल्य मन में धारण कर लेती है।।10।। मौन लेकर वह सेज पर सो गई, न किसी से बोलती है न देखती है।।11।। उसी समय राजा ने घर में प्रवेश किया। वह अपनी प्राणप्रिया नहीं देखता है।।12।। मिथ्याभाषण की खदान वह रानी रति-स्थान में (भी उसे) दिखाई नहीं दी। वह मूर्खा जहाँ बैठी थी राजा पूछकर वहाँ गया।।13।। हर्षित चित्त से उसके पास बैठ गया (वह) हृदय की बात कहने को हाथ पकड़कर उठाता है।।14।। पूछता है–हे देवी! किस कारण से रूठ कर सोयी हो? जो तुझे दु:खकर हो उसी का वध करूँ।।15।। वह उसे कुछ भी उत्तर नहीं देती है। मौन रहते हुए करवट बदल लेती है, बोलती नहीं।।16।। इसके पश्चात् राजा बार-बार विनय करता है,

उसके मन को अच्छे लगने वाले ललित अक्षरों से कथाएँ कहकर, रत्नाभूषण बनवाने का वचन देकर मनाते हुए (उसके) पैरों में गिरता है। पैर पड़ता है।।17-18।।

घत्ता—हे मेरी प्रधान रानी! जो तुझे अच्छा न लगता हो, बहुत दुःख देता हो, जो तुम्हारा शत्रु हो उस अपने प्रतिघाती को मुझे शीघ्र बताओ, तत्काल उसे मारता हूँ।।2-5।।

(2-6)

अमरसेन-वइरसेन के सिर-भंजन की राजाज्ञा-वर्णन

उस राजा की विनय सुनकर (रानी कहती है)—हे राजा! सुनिये! जिस दिन गजपुर नगर से (आप) स्वामी के पास गए उसी दिन आपके घर आग लग गई।।1-2।। अमरसेन-वइरसेन के मुख से निकली वाणी अति वक्र तथा दुःखजनक और कम्पन्न उत्पन्न करने वाली है।।3।। मेरे शील रूपी रत्न के खण्डन में ये न तुम्हारी शंका मानते हैं न निश्चय से स्वजनों की।।4।। ये प्रचंड हैं, आपके नगर के बाजार को लूटते हैं, (इस समय) घोड़ों पर सवार होकर उपवन में क्रीड़ा कर रहे हैं।।5।। शील खण्डित न करने को बार-बार कह-कह करके ही मैंने अपना शील अभंग रखा है।।6।। ऐसा सुनकर क्रूर राजा रूठ गया। वह प्रिया के झूठे प्रपंच को नहीं समझता है।।7।। वह कुमारों को मारने के लिए भयावने, दुष्ट, क्षुद्र मातंग को चिल्लाकर बुलाता है और (कहता है) हे मातंग! परस्त्री में आसक्त कुपुत्र अमरसेन और वइरसेन को शीघ्र मार डालो, देर मत लगाओ, दोनों के सिर काटकर मुझे दिखाओ।।8-10।। ऐसा सुनकर मातंग मन में विचारता है कि निर्मल शीलवन्त, निर्दोष, पुरजनों के सुखकारी, दीर्घबाहु कुमारों को पाकर कैसे घातूँ, कैसे उनका वध करूँ।।11-12।।

घत्ता—अमरसेन राजा के राज्य का आभूषण, शत्रु के सिर के खंडन करने वाला, कठिन (भवसागर से) बिना नौका के पार होने वाला, दुखियों के दुःख को मेटने वाला, दरिद्रता का नाशक है। इसके समान पृथ्वी पर देव या मनुष्य (कोई नहीं) है।।2-6।।

कहा भी है–कौए में शुचिता, जुये में सत्य, नपुंसक में धैर्य, मद्यपान में तत्त्व-चिन्तन, सर्प में क्षमा, स्त्रियों की काम-वासना में शान्ति और राजा में मित्रता किसने देखी अथवा सुनी है।।6।।

(2-7)

कुमार-घात सम्बन्धी मातंग-चिन्तन-वर्णन

वह राजा बार-बार मातंग से कहता है–हे मातंग! क्या सोच रहे हो, यहाँ मत रहो।।1।। लोगों का मनोरंजन करने वाले पापकर्मी वे कुमार क्रीड़ा करने घोड़ों पर चढ़कर नन्दन वन गए हैं।।2।। शीघ्र जाकर मेरे कुल को अपयश देने में लगे हुए (कुमारों को) मेरी श्याम लगी लकड़ी मारो।।3।। वे सभी मातंग बन गये। (उन्हें) राजपुत्र स्वच्छ हृदय दिखाई देते हैं।।4।। मातंग वहाँ बार-बार मन में विचारते हैं कि क्या राजा भ्रांतिचित्त पागल हो गया है।।5।। नित तेज से जिनके द्वारा सूर्य जीत लिया गया है, राज्य-भार को धारण करने वाले, सुगति (मोक्ष) के वे पथिक राजकुमार हमें मारने के लिए क्यों देते हैं?।।6-7।। अथवा (राजा) हमें (भले ही) देश से निकाल दे किन्तु राजा के पुत्रों को वध के कार्य में नहीं लगाऊँ।।8।। राजा के दोनों रत्न नहीं घातते हैं। यदि राजा का वचन रखते हैं तो वे कुमार लौटकर घर कैसे आ सकते हैं। इस प्रकार वे रात्रि में विचार करते हुए सो जाते हैं।।9-10।। सूर्योदय होने पर पुनः राजा की आज्ञा लेकर भी जाकर (वन में जाकर) उन्होंने (राजकुमारों को) बाड़ी के भीतर बन्द नहीं रखा।।11।। अमरसेन और वइरसेन दोनों भाई राजा के घोड़ों पर चढ़कर राजा के नन्दन वन में स्वच्छन्द रहकर क्रीड़ा करते हैं।।12।। तब चाण्डाल कहते हैं–हे कुमार भाइयो! राजा के द्वारा हम तुम लोगों को मारने के लिए भेजे गए हैं।।13।। तुम्हारे झूठे कलंक को सुनकर (हम) आये हैं। अब अपने मन में वीतराग देव का स्मरण करो।।14।। मरणकाल में तुम्हारे हाथ और पैरों की सुशोभित अंगुलियों की सरलता सुगति की देने वाली है।।15।। उनके वचन सुनकर राजपुत्रों ने कहा-यहाँ हमने राजा का क्या अपराध किया है।।16।।

घत्ता—राजा ने भला नहीं किया। निष्कारण राजा बहुमूल्य वचन (कहकर) हम पर कुपित हुए। हमारा दोष हृदय में नहीं विचारा। मारने के लिए क्या (हम) कृमि प्रतीत होते हैं।।2-7।।

कहा भी है—राजा सर्प के समान और दुःखों से रानी कुरूर और टेड़ी-मेंड़ी चाल चलने वाली तथा सर्प की कांचुली में आसक्त, सर्पिणी के समान है। सभी प्रकार से दग्ध जीव या सर्पदंश से दग्ध मणिमंत्र आदि औषधियों से स्वस्थ देखा गया है किन्तु राजा के दृष्टि विष से दग्ध को पुनः उठते (विकास करते) नहीं देखा गया।।1-2।।

(2-8)

अमरसेन-वइरसेन का कर्म-फल-चिन्तन, तथा उन्हें जीवित रहने देने का मातंग-चिन्तित उपाय-वर्णन

वे दोनों भाई परस्पर में कहते हैं, हे भाई! मेरे द्वारा वह राजा जाना जाता है (मैं राजा को जानता हूँ)।।1।। निश्चय से राजा का दोष नहीं जानों। हमें क्यों रोककर विरमाया जा रहा है। घोड़े हिनहिना रहे हैं।।2।। माता अथवा पिता का दोष नहीं होता है। (यह तो) शुभ और अशुभ कर्मों का परिणमन कहा है।।3।। पूर्वोपार्जित कर्म छूटते नहीं। जैसे भाल में साथ लिये हैं (उन्हीं के अनुसार जीव) संसार भ्रमण करता है।।4।। हे यम चाण्डाल! राजा की शान्ति करो, हमारे सिर के टुकड़े-टुकड़े करो, अब शीघ्रता करो।।5।। ऐसा सुनकर चाण्डालों के दया भाव उत्पन्न हुआ। वे कुमारों को गुप्त बातें कहते हैं।।6।। यदि अपने नगर को छोड़कर विदेश के ऐसे स्थान में जाओ जहाँ तुम्हारा नाम न सुनें तो तुम कुमारों को अभी शीघ्र छोड़ देते हैं। राजपुत्र चाण्डालों के वचन मान कर चले गए।।7-8।। कुमारों की प्रतिमाओं के सिर कुण्डलों सहित रुधिर से लिप्त करके राजा के आगे रखकर विनत सिर से (चाण्डालों ने कहा-हे राजन!।) तुम्हारे द्वारा कहे गए तुम्हारे लिए अनिष्ट तुम्हारे दोनों पुत्रों के ये सिर तुम्हारी इच्छानुसार लाये गए हैं। ये दोनों श्रेष्ठ अश्व हैं, भली प्रकार

ग्रहण करो।।9-11।। उन्हें (पुत्रों के सिर) देखकर राजा ने चाण्डालों से कहा फिर मुण्ड लेकर नगर के बाहर जाओ और सूर्य (प्रतिमा) के ऊपर दोनों स्थापित करो जिससे कि नगरवासी आकर उन्हें भी देखें।।12-13।।

घत्ता—चाण्डाल शीघ्र ही फिर मुण्ड लेकर वहाँ सूर्य (प्रतिमा) के ऊपर स्थापित कर देते हैं। कुमारों का मरण सुनकर राजा की पत्नी के अंगों में हर्ष कहीं नहीं समाता है।।2-8।।

(2-9)

विजयादेवी का पुत्र-शोक और कुमारों का वन-गमन-वर्णन

राजा (देवदत्त) हँसता है और विजयादेवी रोती है (और कहती है कि) हे राजन! प्रजा के लिए तुमने यह क्या किया?।।1।। हे स्वामी! तूने उचित-अनुचित नहीं जाना। रानी के वचन सुनकर दुष्ट राजा हँसा।।2।। (रानी कहती है) निर्दोष, युद्ध में अजेय और सूर्य किरण के समान तेजवान! कुमारों को अकारण मरवाकर आपने मेरी हाय-हाय वदी की जबकि मैंने तुम्हारे मन में मनोरथों की पूर्ति की।।3-4।। उसका रुदन सुनकर अति दुखी भव्य जन, तिर्यंच और पक्षी रोने लगते हैं।।5।। भव्य जनों ने रानी को सम्बोधा कि पुत्र शोक से वियोग का दुख अच्छा होता है।।6।। राजा अपने नगर में सुखपूर्वक रहता है और रति के समान रति-सुख भोगता है।।7।। ऐसा सुनकर राजा के द्वारा मतिमान! से पूछा गया कि स्वेच्छानुसार कुमार कहाँ गए (उनका) क्या हुआ?।।8।। राजा को दु:ख देने वाले शील की निधि वे नगर से कहाँ चले गये? क्या मर गये (या) क्या जीते हैं।।9।। ऐसा सुनकर बुद्धिमान कहता है—हे भव्य देवदत्त राजा सुनिये स्तुति करो कि वध न हुआ हो।।10।। इसी बीच राजा के भय से सूर्य के समान तेजवान वे राजकुमार भी प्राण बचाकर भाग गये।।11।। भूमि पर बहुत चलने के पश्चात् वे ऐसे गहन वन में गए जहाँ वन

में वृक्ष अपने कुल को बढ़ाते हैं।।12।। जहाँ मनुष्य दिखाई नहीं देते, पक्षी ही दिखाई देते हैं, जहाँ अति घने तृणों के अंकुर भी हैं।13।। जहाँ सिंह गरजते हैं, हाथी बादलों के समान चिक्कारते/दहाड़ते हैं।।14।। जहाँ फे-फे करते हुए सुना कुत्ते घूमते हैं, वराह बार-पर पृथ्वी खोदते हैं।।15।। उल्लू घू-घू शब्द करते हैं, कौए वहाँ बोलते हैं।।16।। शार्दूल, सिंह, चीता, रोज, गेंडा, सांवर मृग, भैंसा, लोमड़ी, बिलाव, सेही, हाथी, रीछ आदि जहाँ मन के विरुद्ध कार्य करने वाले अति दुष्ट जीव हैं।।17-18।। कहीं सिंह हरिण पकड़ते हैं, कहीं वहाँ न्योले सर्प से युद्ध करते हैं।।19।। जहाँ भूत-पिशाच संचरण करते हैं, डाकिनी, शाकिनी और जोगिनी भ्रमण करती हैं।।20।। जहाँ यम भी जाते हुए शंका करता है।।21।। ऐसे संकटपूर्ण वन में उन्हें पुण्य-भोग से एक आम्र वृक्ष दिखाई दिया।।22।। क्षुधा (भूख) तृषा (पिपासा) से क्षीण काय वे पथिक उस वृक्ष के किनारे विश्राम करते हैं।।23।। वे दोनों भाई वाहन से भूमि पर ऐसे जाते हैं जैसे वीतरागी पैदल भूमि पर चलते हैं।।24।। मन में संसार को असार जानकर लोभ करते हो तो पुण्यास्त्रव करो जिससे कि सार स्वरूप शाश्वत पद (मोक्ष) प्राप्त हो और जिससे संसार के दु:ख रूपी बोझ का संयोग न हो।।25-26।।

घत्ता—वस्त्र, कम्बल और सम्बल से रहित, सत्य के क्रेता वे दोनों भाई निर्गन्थ होकर संन्यास धारण करके सूर्योदय होने तक वन में स्थित रहे।।2-9।।

(2-10)

रानी देवश्री की कुटिलता के सन्दर्भ में अमरसेन-वइरसेन का पारस्परिक ऊहापोह,

वइरसेन ने कहा—हे भाई अमरसेन! सुनो—राजा हमारे किस कार्य से रुष्ट हुआ है।।1।। वहाँ राजा ने बिना अपराध के अयोग्य कार्य क्यों किया। (उन्होंने) उचित और अनुचित नहीं जाना।।2।। ऐसा सुनकर अमरसेन ने उत्तर दिया हे भाई! दुराचारिणी माता के वचन

नियम किसी दूसरे के द्वारा समझे नहीं गए। ऐसा सुनकर छोटा भाई वइरसेन कहता है।।3-4।। जो माता राजा को मिथ्या कार्य कहती है लोगों ने उसकी कुनीति की क्या निन्दा की।।5।। हे भाई! जो स्त्री लज्जा विहीन होती है (वह) स्वेच्छाचारिणी अपने भर्त्तार से क्या क्या नहीं कहती है?।।6।। जैसे वामन पुरुष के निमित्त चिरकाल तक जीवित रहने वाले यशोधर (राजा) को रानी ने गला पकड़ कर (दबा कर) मारा और स्वयं मरकर छठे नरक को प्राप्त हुई। इसके पश्चात् अच्छे कार्य करके उसने देव पर्याय प्राप्त की।।7-8।। रत्तादेवी ने पंगुल (माली) के निमित्त राजा को पकड़कर और उसे घेरकर जलाया (था)।।9।।

घत्ता–मनुष्यों के मन को मोहने वाली, सुगति की निरोधिनी दुराचारिणी वह रत्ता देवी स्नेह से अन्धे हुए आसक्त पुरुषों के द्वारा ले जाई जाती है। निश्चय से रति के लोभी क्या नहीं करते हैं।।2-10।।

कहा भी है– गंगा की बालू और समुद्र जल का कोई परिमाण नहीं है तो भी बुद्धिमान (उसे) जानते हैं किन्तु महिलाओं के चरित्र को नहीं जानते हैं।।छ।।

(2-11)

अमरसेन-वइरसेन के सम्बन्ध में यक्ष-दम्पति के विचार

इस प्रकार अमरसेन को सुनकर वइरसेन उनके कथन का अनुगमन करते हुए कहता है- नियम से यहाँ जिसकी कृपा से हम दोनों पृथिवी पर सुखी हैं वह सौतेली माता हमारी उपकारिणी है।।1–2।। नगर और ग्राम के लोगों को देखते हो, जिनेन्द्र की वन्दना करें, गुरु की ध्वनि/उपदेश सुनें।।3।। पृथिवी पर दुर्जनों और सज्जनों के द्वारा आचरित विविध चरित्र को देखें और जानें/समझें।।4।। वहाँ वृक्ष (के नीचे) दोनों ने रात्रि में विश्राम किया। दोनों को भली प्रकार से नींद आई।।5।। सुरक्षा हेतु वइरसेन पहरेदार बना। इसी बीच उस

आम्र वृक्ष के निवासी यक्ष और यक्षिणी तोते (इन भाइयों को देखकर) निष्कर्ष निकालते हैं कि ये दोनों भाई क्रीड़ा के लिए बैठे हैं, क्रीड़ा के लिए बैठे हैं, अत्यन्त रूपवान् हैं, भले सौन्दर्य से इन्होंने कामदेव को पराजित किया है, ये सुहावने और मन-भावन हैं।।6-8।। स्त्री तोते ने अपनी प्रीतम तोते से कहा- ये दोनों महान् मनुष्य हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे राजा हों।।9।। इनकी अनेक प्रकार से भक्ति करें।।10।। धर्म के कार्य हे प्रीतम! सुगति के हेतु हैं। उनसे मनुष्य और देव पद प्राप्त होता है।।11।। हे प्रीतम! निश्चय से (ये) स्वभाव से धार्मिक हैं, अतिथि हुए हैं, (इन्हें) दान दो।।12।। ऐसा सुनकर तोते ने अपनी प्रिया से कहा–हे प्रिये! निश्चय से हमारे पास द्रव्य नहीं है।।13।। मैं इन भव्य पुरुषों का उपकार करता हूँ। बिना द्रव्य के कोई (भी) अभिमान नहीं करता है।।14।। उपकार करते हुए का सभी प्रकार से कोई (भी) उपकार करता है इसमें संशय नहीं है।।15।। लोक में ऐसी विरली ही माता ऐसी सन्तान को जन्म देती है जो अपकारी पर भी (उपकार) करता है।।16।। निश्चय से दोनों अतिथि भाई हैं, शुभोदय से अच्छे देश में उत्पन्न हुए हैं। परोपदेशी हैं।।17।। निजोपदेशी पापों को शीघ्र हरता है और स्वर्ग के देवताओं में प्रभुत्व (इन्द्र पद) पाता है।।18।। इस प्रकार इन भव्य अतिथियों को विफल करो जिससे कि उद्धार हेतु इन भव्य पुरुषों को फिर आना पड़े।।19।। पृथ्वी पर सज्जन-भक्त वही है जो श्रुत से शोभित उत्तम चित्त वाले शरणागत की रक्षा करता है।।20।।

घत्ता–इसके पश्चात् प्रिया (तोते) के द्वारा अपने प्रीतम (तोते) को कहा गया–हे स्वामी! ऐसे वचन मत कहो। पर्वत की चोटी पर एक गुप्त स्थान है, वहाँ दो आम फले हैं।।2-11।।

(2-12)

यक्ष दम्पत्ति द्वारा अमरसेन वइरसेन को दान किये गये आम्र-फलों का माहात्म्य-वर्णन

विद्या-सम्पन्न वह विद्याधर (कीर पक्षी) बहुरूपिणी विद्या का स्मरण करके व्रती, हजारों जीवों पर दया करने वाले, निर्विकार शुद्ध दोनों भाइयों को मीठे आम लाकर देता है।1-2।। फलों के स्वाद से सम्पूर्ण क्षुधा तिरोहित हो जाती है। सुख होता है। ठीक है-पुण्य से क्या नहीं होता।।3।। उसी समय एक विद्याधर पक्षी ने विनत वदन से (दूसरे) विद्याधर पक्षी से पूछा।।4।। उसने कहा हे पूज्य! आम-फल के गुण कहकर/बताकर मेरे मन का संशय दूर करो।।5।। जिससे मेरे हृदय को सुख प्राप्त हो। ऐसा सुनकर दूसरे विद्याधर ने कहा।।6।। सूर्योदय के समय करने योग्य जिस समय दांत धोता है उस समय पृथ्वी पर करुड़ा (कुल्ला) करते हुए (करके जो) छोटे वृक्ष के पवित्र फल का स्वाद लेता है वह (स्वाद) जब तक मनुष्य के हृदय में रहता है, पोषण करता है और वह मनुष्य नित्य पाँच सौ रत्न उगलता है।।7-9।।

कहा भी है-जिसे सम्पत्ति की प्राप्ति में हर्ष और विपत्ति में दु:ख नहीं होता, युद्ध में धैर्य धारण किये रहता है, ऐसे तीन लोक में तिलक स्वरूप पुत्र को विरली माता ही जन्म देती है।।1।। गुणों को विरले ही जानते हैं, विरले स्वामी ही निर्धन को पालते हैं, पर कार्य करने वाला विरला होता है और पर-दु:ख में दु:खी विरला ही होता है।।2।।

जो दूसरे आम्र वृक्ष के फल का स्वाद लेता है वह सातवें दिन शीघ्र राज्य पाता है।।10।। अपनी इच्छा के अनुसार अचल राज्य-लक्ष्मी को भोगता है, सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा (उसके) चरणों में लोटते हैं (चरणों की सेवा करते हैं।)।।11।। इन्हें मन में एक जन्म से दूसरे जन्म की मुक्ति का हेतु जानों-ऐसा कहकर विद्याधर अपने स्थान पर चले गये।।12।। हे मेरे प्रिय प्रीतम! विद्याधर को कहते हुए जो मैंने सुना है वह तुरन्त करो।।13।। वे दोनों आम्र फल शीघ्र लाओ और राह से भटके हुए भाइयों को विधिपूर्वक दीजिए।।14।। वह विद्याधर

(कीर) दोनों भाइयों के उपकार के लिए जहाँ आम के फल थे उस पर्वत की शिखर पर गया।।15।। वह मुँह से पकड़ पकड़ कर उन्हें लाकर पृथ्वी पर गिराता है।।16।। इस प्रकार अभ्यागतों को विधिपूर्वक दान देकर वह सुखपूर्वक आम्र पर बैठ जाता है।।17।। वइरसेन ने चतुर विद्याधरों द्वारा जो कहा गया उसे सुना।।18।। इसी समय अमरसेन जाग गया। अपने भाई को सुलाने के लिए जिससे कि (उसके) हृदय का भय छोड़कर भाग जाता है, वह सुखपूर्वक बैठ गया और पहरा देता है।।19-20।। तभी कुमार के आगे दो आम्र फलों का सुन्दर गुच्छा ऊपर से आ गिरा।।21।। वइरसेन ने उन्हें लेकर गाँठ में बाँध लिया। बुद्धिमान बड़ा भाई यह जान नहीं पाता है।।22।।

घत्ता–जिसके द्वारा मन इच्छित वस्तु प्राप्त कर ली गई है वह छोटा भाई बड़े भाई की सहायता से सो गया और भोर होते ही उठ गया। उसने अपने मन में संतुष्ट होकर बड़े भाई को प्रणाम किया।।2-12।।

(2-13)

अमरसेन-वइरसेन का वन से प्रस्थान, सरोवर पर विश्राम और वइरसेन को रत्न-प्राप्ति वर्णन

वे दोनों धीर-वीर महा भयानक उपवन को छोड़कर प्रभात होते ही चल दिये।।1।। मार्ग में जाते हुए उन्हें शरद् ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्र के समान स्वच्छ कमल और जल वाला सरोवर दिखाई दिया।।2।।

बड़ा भाई वहाँ-अनेक प्रकार के वृक्षों और पक्षियों के कलरव से सुशोभित सरोवर के बाँध पर जाता है।।3।। इसी समय वइरसेन ने वस्त्र की गाँठ खोलकर पथ-भ्रमित बड़े भाई को अविद्यमान देव और राजाओं की ऋद्धि को देने वाले बड़े आम्रफल को दिया।।4-5।। दोनों कुमार शुद्धि (शौच आदि निवृत्ति) के लिए उद्यान भूमि पर (वन में) भिन्न-भिन्न हो गए (पृथक-पृथक स्थान पर चले गए)।।6।। इसके पश्चात् लौटकर वे सरोवर के किनारे आये। उन्होंने

शुद्ध जल से शारीरिक शुद्धि की।।7।। वइरसेन ने अपने मन में जैसा शुक दम्पत्ति से सुना था वैसा करने का विचार किया।।8।। छिपकर वह प्रमाण फल हेतु (सत्य-असत्य जानने को) सुखकारी आम्रफल निगल गया।।9।। मुँह धोता है और मुँह में पानी भरता है तथा नियमानुसार पृथ्वी पर कुल्ला करता है।।10।। इच्छानुसार लौकिक सुन्दर वेष (वस्त्राभूषण) देने वाले वहाँ पाँच सौ रत्न शीघ्र गिरते हैं।।11।। यक्षिणी (कीर) के कहे अनुसार रत्न गिरते ही अपने वस्त्र में बाँधकर छिपा लिये।।12।। बड़े भाई को इसका कोई भेद नहीं दिया। उसने बड़े फल के रहस्य की प्रतीक्षा की।।13।।

घत्ता–गुण रूपी रत्नों की खदान दोनों भाइयों ने स्वच्छ जल में स्नान किया। पश्चात् निर्मल चित्त से वे दयालु सुखपूर्वक सरोवर से बाहर निकले।।2-13।।

साहु महणा के पुत्र चौधरी देवराज के लिए रचे गये महाराज श्री अमरसेन के चारों वर्ग की कहने में सरल कथा रूपी अमृत रस से भरपूर इस चरित में श्री अमरसेन-वइरसेन की उत्पत्ति, बालक्रीड़ा, विद्याभ्यास, और साथ-साथ उनके गमन का वर्णन करने वाला दूसरा परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।।संधि।।2।।छ।।

जब तक सर्वज्ञ की वाणी का संसार में वास है, जब तक हिमालय पर्वत है, जब तक पृथ्वीतल पर तरंगित गंगा बहती है और जब तक समुद्र में वेगपूर्वक माला रूप में उठती हुई लहरों की गर्जना है, तब तक देवराज अपने पुत्र-पौत्र आदि के साथ सुखी रहकर आनन्दित रहें।। इति आशीर्वाद।।1।।

जिहनइ जितनउ सिरजियउ, धण्णु विवसाउ सहाऊ।
तिहंनइ तितनउ संपज्जइ, जिंह भावइ तहिं जाउ।।

जिसे जहाँ रुचिकर हो वह वहाँ ही क्यों न चला जावे किन्तु उतना और वैसा ही धन, व्यवसाय और स्वभाव वह पाता है जैसा और जितना जिसने सृजन किया हैं।

❑❑❑

तृतीय परिच्छेद

(3-1)

अमरसेन-वइरसेन का कंचनपुर-प्रवास-वर्णन

ध्रुवक

हे मगधराज (श्रेणिक)! जिस प्रकार दोनों भाइयों का वियोग हुआ (वह) सभी संक्षेप से कहता हूँ, सावधान होकर सुनो।।छ।। वहाँ वइरसेन निर्विकार भाव से बड़े भाई के चरणों की विविध प्रकार से सेवा करता है।।1।। उस समय वह स्वच्छ हृदय द्रव्य से भोग-विलास करता है। नित्य छहों रसों से युक्त पेट की क्षुधा-वेदना को नाशने वाला भोजन भक्तिपूर्वक भाई को करा करके (स्वयं) करता है।।2-3।। नित्य देवताओं के समान दिव्य वस्त्र पहनता है, भक्तिपूर्वक दान देकर याचकों का पोषण करता है।।4।। उसी समय अमरसेन पूछता है। कहता है हे भाई वइरसेन! मेरी बात सुनो।।5।। जिससे अपने हाथ से दीन-हीनों का पोषण करते हो, वह शृंखलाबद्ध लाभकारी सम्पदा कहाँ से प्राप्त की है।।6।। ऐसा सुनकर वइरसेन कहता है—जिनधर्म-भक्त, शृंखलाबद्ध पुण्य करने वाले हे भाई सुनो! जब हम से रूठकर राजा ने (हमें) मारने को दुष्ट चाण्डाल भेजे थे तब राजा के राजकीय परिजनों में तीन ने मुझे भीतर प्रवेश करने दिया।।7-9।। मैंने सात दीनार (मुद्रा) छिपाकर अपने भण्डार में रख लिये।।10।। हे भाई! उन्हें ले आया हूँ। शुभ कार्यों में (उस) शुभ सम्पदा को सुख पूर्वक भोगो।।11।। इसी समय सातवें दिन युद्ध में दुर्निवार (अजेय) कुमार कंचनपुर गए।।12।। वे राजा (उस) नन्दनवन में उतरे जहाँ कूप, तड़ाग और स्वच्छ वायु थी।।13।। वृक्ष सुन्दर पक्षियों, फूल-फल, सुगन्धि के लिए आये सुन्दर भ्रमरों से सहित थे।।14।। हर्षित चित्त से नर-नारी जहाँ क्रीड़ा करते हैं। कमलमुखी नारियाँ अपने पति का अनुरंजन करती हैं।।15।। वहाँ मनुष्यों के लिए कोयल सुन्दर शब्द बोलती है, बन्दर वृक्षों की सुन्दर

शाखाओं पर झूलते हैं।।16।।

घत्ता–उस उपवन में मन में प्रसन्न होकर शारीरिक सौन्दर्य से कामदेव को पराजित करने वाला, प्रखर बुद्धि कुमार वइरसेन भोजन का सामान लाने को कंचनपुर गया।।3-1।।

(3-2)

अमरसेन को कंचनपुर का राज्य-प्राप्ति-वर्णन

इसी बीच कंचनपुर का राजा हैजे की बीमारी से शीघ्र मर गया।।1।। पुत्रहीन होने से उसका राज्य निष्फल गया, उस राज्य को कोई उद्धारक प्राप्त नहीं हुआ।।2।। उस राजा के गोत्र में (जो) भाई लगते हैं (वे) परस्पर में दुराशायी और मूर्ख हैं।।3।। मंत्री भली भाँति सभी को मत झगड़ों कहकर और रोककर (समझाते हैं कि) संसार मिथ्या है, निरर्थक है।।4।। हाथी जिसे राजपट्ट देवे वही इस नगर का भली भाँति राज्य करे।।5।। ऐसा सुनकर सभी ने मंत्रियों की बात मान ली। सुन्दर हाथी सजाया गया।।6।। उसकी सूंड पर मणि जटित, सूर्य के समान दीप्तिमान पुण्यकलश देकर घुमाया गया।।7।। हाथी ने सूंड ऊँची करके (पुण्य-कलश) लिया और कंचनपुर के सभी घर घूमा।।8।। वह किसी के सिर पर कलश नहीं ढोरता है। ठीक ही है–लक्ष्मी हीन पुरुषों के घर में प्रवेश नहीं करती है।।9।। उस हाथी ने मृत राजा के सभी पुरजनों में किसी भी मनुष्य को राजा नहीं माना।।10।। नगर से बाहर निकलकर वह वन में (वहाँ) गया जहाँ शुभ कार्य करने वाला, पुण्यात्मा अमरसेन स्थित था।।11।। जैनधर्म में आसक्त, शुद्धचित्त राजपुत्र अमरसेन भर नींद सोया था।।12।। वह विचारता है कि जीव-जहाँ विविध सुख प्राप्त करे, जहाँ जन्म-जरा और मरण नहीं, वहाँ जीवात्मा जब जाता है, अर्जित कर्म शेष नहीं रहते, गल जाते हैं।।13-14।। उस स्थान का रहने वाला, शृंखलाबद्ध गुणों का आगार, सोता हुआ अमरसेन उस हाथी को दिखाई दिया।।15।। सूर्य के समान तेजस्वी राजपुत्र (अमरसेन) को राजपट्ट

धारण करने में धुरंधर जानकर हाथी उसे उठाकर उसके सिर पर कलश ढोरता है। नगरवासी जनों ने मान त्याग करके जय-जयकार किया।।16-17।।

घत्ता—पुरजन, मंत्री, अन्य अनेक राजा सभी अतुल बलवानों ने प्रणाम किया और स्त्रियों के मन को हरने वाला राजा अमरसेन को हाथी के ऊपर चढ़ाया/बैठाया। वे ऐसे लगते थे मानों ऐरावत पर बैठा इन्द्र हो।।3-2।।

कहा भी है—मेघों का बरसना, सज्जनों से याचना, सद्गुरु के वचन और राज्य की वृद्धि इच्छित फलदायी होती है।।छ।।

(3-3)

वइरसेन का कंचनपुर में प्रच्छन्न वेष में रहना तथा दीन-वचन सम्बन्धी विचार-वर्णन

भक्त जन विविध प्रकार से जय-जय शब्द और स्तुति करते हैं। भाट विरुदावलियाँ कहते हैं।।1।। बहुत प्रकार के बाजे बजाये जाते हैं, विभिन्न स्वर होते हैं, स्त्रियाँ अमृत के समान मीठी वाणी से मंगल गीत गाती हैं।।2।। बहुत उत्सवपूर्वक राजा अमरसेन को कंचनपुर नरेश के सिंहासन पर अमृतोपम वाणी से बैठाया।।3।। अपने भाई से रहित वह सुखपूर्वक राज्य करता है। भोजन के लिए गया भाई उसे शीघ्र नहीं मिला।।4।। राजा के मन में उत्तरोत्तर चिन्ता बढ़ती है। उसने अपने नगर और वन में ढुँढवाया।।5।। राजा को प्राण-प्रिय भाई दिखाई नहीं दिया। वह संचित राज्य सिंहासन पर बैठा रहता है।।6।। इसी बीच उसी कंचनपुर में वइरसेन छिपकर रहता है।।7।। वह सुखपूर्वक सम्पदा और गम्भीर निधि को भोगता है। पुरजन और राजा जान नहीं पाते हैं।।8।। वइरसेन ने राज्य सिंहासन पर अपने हितैषी बड़े भाई को बैठा जानकर हृदय में विचार किया।।9।। मैं शीघ्र राजमहल नहीं जाऊँ, उनके आगे यह कहना भी युक्त नहीं है कि हे राजन् मैं तुम्हारा (भाई) लगता हूँ अतः मुझे गाँव, नगर और राजकोष

दो।।10-11।। हे राजन! मैं तुम्हारा छोटा सहोदर भाई हूँ। हे चरित्रवान भाई! मेरे ऊपर दया करो।।12।। वन में हाथी, सिंह और सर्पों की सेवा करना अच्छा है, वृक्षों के पत्ते और कन्दमूल खा लेना अच्छा है, तृण शैय्या अच्छी है, शरीर पर वृक्ष की छाल पहनना अच्छा है किन्तु दीनता भरे वचन नहीं बोलें।।13-14।। पुरुषार्थी को यह युक्त नहीं। पृथ्वी पर भाई का धन हीन होना ठीक नहीं है।।15।। पृथ्वी पर सज्जन यदि अर्थ-विहीन है तो वह जंगल में भले रह लेता है किन्तु पृथ्वी पर लोभाकृष्ट होकर दीनता भरी वाणी नहीं बोलता है।।16-17।। (जो) महामतिमान! मान रहित होकर स्वाभिमान की रक्षा करता है (वह) निश्चय से हाथी पर असवार होता है।

घत्ता–लक्ष्मी से अभिमान में रहकर मन में कुटिलता धारण करके वइरसेन वहाँ मागध वैश्या के घर उसकी पुत्री कामकंदला के नेत्रों से आविद्ध हो गया।।3-3।।

(3-4)

वइरसेन का धनापहरण एवं घात सम्बन्धी वेश्या का पुत्री से विचार-विमर्श

अप्सरा के समान सुन्दर वेश्या का लोभी (वइरसेन) उस वेश्या के घर सूर्योदय होने पर वमन करता है।।1।। आम के फल के गुणस्मरण से पाँच सौ सुन्दर रत्न गिरते हैं।।2।। कुमार स्वेच्छानुसार द्रव्य भोगता है। वह दरिद्रियों की तीव्र दरिद्रता नष्ट करता है।।3।। राजा ने बार-बार ढुँढवाया किन्तु उन्हें मदनराज सहोदर नहीं मिला।।4।। वइरसेन नगर में वेश्या के साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा करते हुए सहवास करता है।।5।। बहुत दिन निकल जाने के पश्चात् धन की लोभी वृद्धा वेश्या ने अपनी पुत्री से पूछा, कहा।।6।। हे पुत्री! रो-रोकर बिना व्यापार के अमित द्रव्य होने का भर्त्तार से रहस्य पूछो।।7।। हे पुत्री! वह रति के समान विलास करता है। युक्ति और नीतिपूर्वक इसे मारकर वह इससे ले ले।।8।। ऐसा सुनकर पुत्री सुन्दर वचन कहती

है–हे माता! तुम्हारी धन से तृप्ति नहीं होती।।9।। बिना अपराध का वध करना युक्त नहीं। वह अपना मित्र है, घर में धन लाता है।।10।। पुत्री के वचन सुनकर लोभ में आसक्त और पाप से लिप्त वह अपनी पुत्री को क्रोधित होकर कहती है कि मत झगड़ों, मत मारो। इससे क्रोध न करूँ तो किसके साथ करूँ।।11-12।। उसे (वइरसेन को) और रत्नों को भी लाकर हृदय को भस्म करने वाली वह शीघ्र जानकर हाथी के नीचे दे देती है।।13।। वह बार-बार हाथी पर कुपित होती है किन्तु वह (वइरसेन के ऊपर) नहीं चढ़ता है। वह वेश्या हाथ मलती है और हृदय विसूर-विसूर कर रोती है।।14।।

घत्ता–इसके पश्चात् वह व्याभिचारियों की लुटेरिन, कुट्टनी कहती है–हे पुत्री! एकाग्र मन से सुनो! जन-मनहारी यह देवपुरी नामक नगरी में (हुआ) निंद्य ग्रह-देवता दिखाई देता है।।3-4।।

(3-5)
वेश्या द्वारा पुत्री को कही गई देवपुरी की राज कथा-वर्णन

धन और धान्य से परिपूर्ण, सुख की निधान, देवों की सुखकारी, विद्वानों की खदान उस नगरी में शत्रुजन रूपी हाथी को विदारने के लिए प्रचण्ड मृगेन्द्र स्वरूप देवदत्त नृपति था।।1-2।। ज्ञानवान! जिन गुरु के चरणों की भक्त, मृग-नयनी देवश्री उसकी रानी थी।।3।। वहाँ देखने में अरुचिकर, सम्पूर्ण शरीर से भयंकर, पापी एक राक्षस रहता।।4।। वह दुष्ट नृपति के आगे कहता है–हे राजन! भली प्रकार कहो! सुन्दर क्या है?।।5।। (राजा ने उत्तर देते हुए कहता है)–जीवों को जो भोजन के साथ पृथ्वी पर प्रिय है जिसके बिना लोक का सब कड़वा प्रतीत होता है।।6।। ऐसा सुनकर राक्षस के द्वारा वह मारा गया। उस राजसिंहासन पर नया राजा सुखपूर्वक बैठा।।7।। छह माह पश्चात् पापी, देखने में खराब, भयंकर, काली देहवाला, पर्वत की गुहा के समान मुँह फाड़े हुए, उठे हुए बालों वाला, गुंजाफल के

समान लाल नेत्रवाला, यम के वेष में वह पुनः आया।।8-9।। उसने राजा से कहा–शीघ्र बताओ! इस लोक में सुन्दर क्या दिखाई देता है?।।10।। स्त्री-सुख से राजा कहता है-रति सुख। इसे राक्षस ने तत्काल मार डाला।।11।। इस प्रकार पापी, निर्दयी राक्षस के द्वारा बहुत से राजा मारे गये।।12।। राक्षस का भय मानकर हृदय में शल्य होने से कोई नया राजसिंहासन पर नहीं बैठता है।।13।। कहा भी है–पथिक के समान बुढ़ापा, दरिद्रता के समान पराभव, मरण-भय के समान अज्ञान और भूख की वेदना के समान अन्य कोई वेदना नहीं है।।14।। इसी बीच मंत्रियों ने शीघ्रता से मंत्रणा की और नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो सुभट आकर राजा के सिंहासन पर बैठेगा उसे राज पद दिये जाने का वचन दिया जाता है।।15।। महल के साथ राजा के चरणों की सेवा करेंगे। वह निःशल्य होकर पृथ्वी का भोग करे।।16।। घोषणा सुनकर धुत्ताणधुत्त नामक एक स्थिर पुरुष आकर राजा के सिंहासन पर बैठ गया। बड़े-बड़े मंत्रियों ने भली प्रकार राजा की वन्दना की।।17-18।।

घत्ता–जिनेन्द्र के चरणों के भक्त राजा नियमानुसार अपनी प्रजा का सुखपूर्वक राज्य करते हुए पालन करता है। छह मास पश्चात् राक्षस ने आकर कहा–राजन् कहो! निश्चय से मीठा क्या है?।।3-5)

(3-6)

कुन्दलता को वइरसेन से उसके धनोत्पादक का रहस्य ज्ञात करके माता से प्रकट करना तथा द्रव्य-विभाजन कथन-वर्णन

राक्षस का प्रश्न सुनकर राजा संतुष्ट हुआ। वह राक्षस के आगे हृदय में स्थित (विचार) प्रकट करता है/कहता है।।1।। जो जिसका अधिक सुखकारी होता है, उसको वह मीठा है (अतः) निश्चय से भली प्रकार साला मीठा है।।2।। राजा के इस वचन से राक्षस संतुष्ट हुआ। संतुष्ट होकर वह धूर्त राजा को अपने आवास में ले गया।।3।। उसने दिव्य वस्त्र पहनाये और सोलह शृंगार कराये।।4।। सुख की

स्थान, अनुपम रूपवान सोलह दायीं ओर और सोलह बायीं ओर स्त्रियाँ (दीं)।।5।। जो जो (तुम्हारा) प्रीतम है वह मुझे अधिक प्रिय है। उसको अपने मन में जैसी विभूति भाती है, जो मीठा लगता है वह (मुझे) मन में मीठा है। हितकारी है। इस प्रकार वृद्धा वेश्या ने भली प्रकार कहा।।6-7।। इस प्रकार माता मागधी के वचन सुनकर दूसरे दिन कुन्दलता ने विचार करके रति-सुख के समय वइरसेन से पूछा-हे प्रीतम! (मेरी) बात सुनो। बिना व्यापार के द्रव्य नहीं होता है (अत:) अपनी लक्ष्मी का कोई उपाय बताओ/कहो।।8-10।। मूर्ख वइरसेन कपट-भेद नहीं लाया। असह्य कष्ट से जिससे (वह लक्ष्मी) प्राप्त की जाती है सरल परिणामी वइरसेन ने वह आम्रफल का सम्पूर्ण भेद सुखपूर्वक उस वेश्या (कुन्दलता) से कहा।।11-12।। वह कुन्दलता उस भेद को लेकर मिथ्या वचनों की भंडार अपनी माता के पास हँसते हुए आकर उस वृद्धा मागधी को निश्चयपूर्वक कहती है-उस वइरसेन ने मुझसे हैरानी दूर करने वाला भेद प्रकट कर दिया है।।13-14।। उसका कथन सुनकर धिक्कार हो उस लोभिनी वृद्धा (मागधी) ने उत्तर दिया-द्रव्य लेकर मन के अनुसार हिस्से बनाकर दो।।15।। उसने बँटवारा करके भोजन के बीच दे दिया और अपना हिस्सा छिपकर ले लिया। इसे वइरसेन नहीं जान पाता है।।16।। भोजन के समय राजकुमार वइरसेन ने कष्ट देने वालों को भोजन कराया।।17।। इसके पश्चात् निर्बल वह शीघ्र वन गया किन्तु कामदेव की मूर्ति सहारा नहीं देती है।।18।।

घत्ता-शत्रुओं का क्षय करने में काल स्वरूप द्रोही कुमार वइरसेन वमन करता है। द्रव्य की लोभी (वमन लेकर) वेश्या माता उस स्थान गई (किन्तु) वहाँ से पक्षी उड़ गए थे।।3-6।।

(3-7)

वइरसेन का वेश्या के घर से निकाला जाना तथा स्त्री को गुप्त भेद देने पर किया गया पश्चाताप वर्णन

उस स्थान पर दरिद्रता-नाशक आम्र-फलों से ऊजड़ दिखाई

दिये।।1।। वह मागधी वेश्या वमन की थाली लेकर घर के बाहर ले जाकर वमन में जो रत्न थे उन्हें धो लेती है।।2।। उन्हें अपनी गाँठ में बाँधकर अपने घर आकर उस वइरसेन को निर्धन जानकर उससे विरक्त हो जाती है।।3।। निश्चय से इसने उसे पहनने को कुछ नहीं दिया। (ठीक है) सौन्दर्य से युक्त होकर भी निर्धन क्या करे।।4।। कहा भी है–विषधर (सर्प) अच्छा है, वेश्या नहीं। सर्प (के काटे हुए) को मंत्र से फूँक देते हैं। (वह) ठीक हो जाता है किन्तु जो वेश्या के द्वारा डसे गये हैं उन मनुष्यों का मरण ही उपाय है।।छ।। वेश्या की आँखें रोती हैं और मन हँसता है। इस सत्य को हर व्यक्ति जानता है कि वेश्या विरुद्ध लोकों को वैसा ही करती है जैसे करोंत (लकड़ी की) काटती है।।1।। वेश्या न रूपवान को महत्व देती है न रूपवान कुलीन को। उसके द्वारा रूपवान और पुण्य कुलीन को। उसके द्वारा रूपवान और पुण्यवान सारहीन के समान (समझे जाते हैं) वह जहाँ फल (लाभ) होता है वहाँ जाती है।।2।।

वृद्धा वेश्या ने वइरसेन को घर से निकाल दिया। वह रात्रि में पृथ्वी पर एक निर्जन पुराने स्थान पर गया।।5।। वह सरोवर पर जाकर मुँह धोता है और शीघ्र पृथ्वी पर निश्चय से कुल्ला करता है।।6।। उससे एक रत्न भी नहीं निकलता है। (तब वह) बार-बार (कुल्ला) करता है किन्तु रत्न प्राप्त नहीं होता।।7।। राजपुत्र तब दुखी हुआ और पीटकर वह (अपने) मधुर भविष्य पर विचारता है।।8।। पश्चाताप करते हुए कहता है– हाय! हाय! विषयासक्त मैंने क्या किया? वेश्या में आसक्त रहकर और मोह से अंधे होकर जो मैंने अपना गुप्त भेद वैश्या को दे दिया। इससे वेश्या को रत्न मिले और मेरे हृदय को दुःख मिला।।9-10।। द्रव्य के बिना यह मनुष्य क्या करे। उसके बिना मनुष्य पृथ्वी पर सुशोभित भी नहीं होता।।11।। जो प्रतिदिन माँगकर क्षुधा की तृप्ति करते हैं भक्त (उन) याचकों का कैसे पोषण करूँगा।।12।।

घत्ता–प्राण, कंठगत हो जाने पर भी पति अपने हृदय का गुप्त भेद स्त्री (पत्नी) को नहीं देवे। (इसी कारण) राजा परीक्षित बैरी

प्राणियों द्वारा शीघ्र ही ले जाये गए थे और पुण्डरीक ने नागेन्द्र पर विजय प्राप्त की थी।।3-7।।

(3-8)

राजा परीक्षित का मरण-निमित्त वर्णन

ऐसा सुनकर देवराज ने कहा—हे (पण्डित) मुझे निर्भय होकर वह कथा कहो।।1।। ऐसा सुनकर पंडित हर्षित होते हुए सुखपूर्वक राजा परीक्षित की कथा कहता है।।2।। इस जम्बूद्वीप के कुरुजांगल देश के गजपुर (हस्तिनापुर) नगर में नीतियों से विभूषित राजा परीक्षित ने सुखपूर्वक राज्य करते हुए एक अवधिज्ञानी मुनि से नम्रतापूर्वक पूछा—हे नाथ! मेरा मरण कैसे होगा? शुभ ध्यानपूर्वक या अशुभ ध्यानपूर्वक, वाहन सहित या वाहन रहित अवस्था में।।3-5।। राजा का प्रश्न सुनकर स्वच्छ हृदय मुनिराज कहते हैं।—सर्प काटेगा, इस दिन का उपवास करते हुए रहो।।6।। हे मित्र! कुछ भी संशय मत करो, हे कुल-कमल दिवाकर! कोई भी शरण नहीं है।।7।। यदि शरण है तो जिनवाणी, उसे चित्त में धारण करके शुभगति पाकर संसार को मेटो। संसार-भ्रमण को नाशो।।8।।

घत्ता—ऐसे वचन सुनकर राजा को अतीव भय उत्पन्न हुआ। ठीक ही है—मिथ्यादृष्टि को शुभगति देने वाले जिनेन्द्र के वचन कैसे रुचिकर हो सकते हैं।।3-8।।

(3-9)

राजा परीक्षित का मरण तथा वणिक्-कोतवाल-वार्तालाप-वर्णन

राजा परीक्षित ने शीशम की लकड़ी के महल और उसके आसपास वलयाकार जल-दुर्ग (खाई) बनवाया।।1।। उसमें आयुध-स्वरूप परम्परा से भयंकर जलचर प्राणी रहते हैं। (जो) वहाँ जाता है वह प्रवेश नहीं कर पाता।।2।। राजा न स्नान करता है, न भोजन करता है और न कोई विनोद-मनोरंजन करता है। उसके मन

में रात-दिन शोक बढ़ता है।।3।। उसकी (राजा की) नौ कली (द्वार) वाली देह जहाँ थी उस स्थान (में) एक वन-तापसों ने प्रवेश किया।।4।। कोरंट वन से आये एक (तापस) ने चिन्तापूर्वक कहा/पूछा—रात्रि के पिछले पहर में क्या हुआ?।।5।। उससे ऐसा सुनकर दूसरा वन-तापस भी कहता है कि मेरे लिए भी राजा परीक्षित प्रिय है।।6।। दिन-दिन में देह को नयी अथवा नवों कलियों में मेरे प्राणों को प्रवेश कराओ और पूर्ण करो/प्राण युक्त करो।।7।। दूसरे कोतवाल ने इस प्रकार कहा—हे वन तापस! आप ही इस तरह (कोई) युक्ति करो।।8।।

घत्ता—(वन तापस कहता है)—अन्य लोगों को लेकर राजा की नौ द्वाररूप कली वाली देह को बाँधकर सूर्योदय होने के पहले प्रभात बेला के समय उपवन में तुम लोग लाओ और खुले आकाश में दावाग्नि में जला दो/दाह-संस्कार कर दो।।3-9।।

qqq

(3-10)

राजा परीक्षित मरण, दाह-संस्कार एवं नागयज्ञ वर्णन

चन्द्र स्वरूप राजा परीक्षित का वियोग न हो अतः सुखपूर्वक सर्प कीलित करो।।1।। इस प्रकार जो उस कोतवाल के द्वारा कहा गया। इस वन-तापस के द्वारा स्वीकार किया गया।।2।। अधिक क्या कहें राजा श्रेष्ठ मणियों से खचित झालरों का त्याग करके नीचे पड़ गया/सोया।।3।। सोते हुए रात्रि में वह सर्प द्वारा खाया गया/डसा गया और विष से आविद्ध होकर तत्काल मर गया।।4।। हाय-हाय कहता/चिल्लाता हुआ नरक गया। ठीक ही है—जिनधर्म के बिना किसे सुगति प्राप्त हुई है।।5।। इसी बीच सर्प से राजा परीक्षित का मरण सुनकर धनपति (राजा का कोष रक्षक) पुत्र-समूह के साथ उसे लेकर घर चला तथा वहाँ से वह उछलकर धनवन्तरि (वैद्य लाने) जाता है।।6-7।। उसने (वैद्य ने) कहा—राजा का सर्प दंश से मेल

कराओ। धनपति ने वैद्य से कहा कहो कहाँ जावें?।।8।। वैद्य के कथनानुसार वह धनपति राजपुत्रों के साथ राजा के जीवन के हेतु परीक्षित को लेकर चला।।9।। पश्चात् ऊपर कहे हुए धनपति के द्वारा एक वट वृक्ष देखा गया और वह परीक्षित राजा (वहाँ) भस्म कर दिया गया।।10।। पश्चात् (भस्म) उसके द्वारा क्षण भर में हवा के द्वारा उड़ा दी गई और पानी के द्वारा बहा दी गई।।11।। सर्प द्वारा दंशित गले से विचित्र चमक उसके द्वारा देखी गई।।12।। लंघन से ताड़ित होकर उसके मरण को प्राप्त होने पर वैनतेय-गरुड़ के द्वारा सर्प-बामी खोद डाली गयी।।13।।

घत्ता—वह (परीक्षित-पुत्र जन्मेजय) सर्पों का होम (यज्ञ) करने लगा। कवि कहता है कि बैर भला नहीं होता है। इसी प्रकार नागराज पुण्डरीक दियवर नामक व्यक्ति के घर गया।।3-10।।

(3-11)

पुण्डरीक का स्त्री से गुप्त भेद कथन तथा उससे उत्पन्न स्थिति का वर्णन

दियवर के कुल में उत्पन्न जब अठारह (पुत्र) मर गये तब पुण्डरीक ही (शेष) पास में रहा।।1।। वह बनारस नगर में शास्त्रों का अभ्यास करता है। इसके द्वारा बहुत शीघ्र अर्थ जान लिये जाते हैं।।2।। उस दियवर के द्वारा उसे अपनी कन्या दी गई और सभी को सुन्दर भोजन कराया गया।।3।। सुखपूर्वक सोते हुए रात में अकेले में इस ऊँचे-तगड़े (पुण्डरीक) से उसकी स्त्री ने अपना (भेद) प्रकट करने को कहा और वह भी 'सर्प हूँ'—सत्य कह देता है।।4-5।। हे नाथ! मुझे अपना रूप दिखाइए—(पत्नी के कहने पर वह कहता है) तुम सहन नहीं कर सकती और उसके द्वारा रहस्य कर दिया जाता है।।6।। पत्नी के विशेष आग्रह से वह सर्प हो गया। उस पत्नी के द्वारा वह देखा जाकर नाग-नाग चिल्लाया गया/पुकारा गया।।7।। मेरा स्वामी नाग है। इसने यह रूप बनाया है। पिता के द्वारा विवाह किया

जाकर कुये में फेंकी गई हूँ।।8।। यह वार्ता सम्पूर्ण नगर में गयी। विनयपूर्वक बुलाया गया गरुड़ वहाँ आया जहाँ पुण्डरीक नाग था। वह चौंच खोलकर किसी को खाते हुए बहुत देश घूमकर बनारस आया और कुएँ के ऊपर वृक्ष पर स्थित हुआ।।9-11। वहाँ पनहारन के द्वारा इस प्रकार कही गई वाणी से दियवर की पुत्री का प्रीतम नाग जानकर उससे गरुड़ ने सम्पूर्ण अर्थ/रहस्य समझ लिया और वह नाग का भक्षण करने को वहाँ गया।।12-13।।

घत्ता—बेचारे को काँपते हुए पाकर (गरुड़ ने) चोंच के आघात से पकड़ लिया। आकाश में जाते हुए ललित अक्षरों से नाग ने उससे बोला/कहा।।3-11।।

(3-12)

पुण्डरीक-नाग-मुक्ति-वर्णन

हे गरुड़! अटवी में तक्षक शिला पर फेंक कर और चोंच से आहत करके खाओ।।1।। इस कथन से प्रेरित होकर वह गरुड़ भी उसे वहाँ तक्षशिला पर ले गया।।2।। उपकारी ने पक्षिराज से वन में जाकर जब गुप्त वचन कहे।।3।। वह कहता है—हे कुल रूपी आकाश के भाई! जाने वाला वहाँ उत्पन्न होकर जीवे।।4।।

कहा भी है—गरुड़ पक्षी के द्वारा ले जाये गये पुण्डरीक नाग ने कहा—जो स्त्रियों को गुप्त भेद कह देता है उसके जीवन का अन्त है।।1।।

नाग से ऐसा सुनकर गरुड़ के द्वारा कहा गया—हे विष-भोज्य! इसका रहस्य प्रकट करो/कहो।।5।। उसके द्वारा यथार्थ रूप से उदास मन से उसका समस्त अर्थ कह दिया गया।।6।। इसके पश्चात् उसके (नाग) द्वारा सुन्दर मीठी वाणी से कहा गया है कि जिसके द्वारा एक अक्षर देने वाला भी गुरु नहीं माना जाता है वह दुखपूर्ण पृथ्वी पर श्वान योनि में सौ बार उत्पन्न होता है।।7-8।। इसके पश्चात् वह मातंग के कुल में उत्पन्न होता है और शीत तथा ताप के विविध

दुखों से खीजता है/दुखी होता है।।9।।

कहा भी है–एक अक्षर सिखाने वाले को गुरु नहीं मानता है वह सैकड़ों बार श्वान योनि में जाकर चाण्डालों में ज्ञानी उत्पन्न होता है।।1।। एक अक्षर के सिखाने और सीखने से स्वभाव से वे गुरु-शिष्य कहे जाते हैं। पृथ्वी पर ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसे देकर (गुरु के ऋण से शिष्य) ऋण रहित हो जाये।।2।।

यह वृतान्त सुनकर गरुड़ के मन में हर्ष उत्पन्न हुआ।।10।। उसने कहा–(जो) एक अक्षर भी देता है/सिखाता है वह स्त्रियों और मनुष्यों का गुरु हो जाता है।।11।। इसने मनोज्ञ बत्तीस अक्षर सिखाये हैं अतः यह मेरा पर इष्ट/हितैषी हो गया है।।12।। इस प्रकार तुम मेरे गुरु हो गये हो, जाओ! कहकर (और) पैर पकड़कर/नमन करके छोड़ दिया।।13।। गुरु के मारने से महापाप होता है (जो ऐसा करता है) वह इस पाप से नरक में रहता है/उत्पन्न होता है।14।।

घत्ता–दान के द्वारा (नाग) लोक में श्रेष्ठ हुआ, (प्राण-संकट से) उबर गया। उसे जीवन मिला/जिया। श्रमण-गरुड़ आकाश में और गुरु नाग भी शीघ्र पृथ्वी में चला गया।।3-12।।

(3-13)

स्त्री-प्रतीति-फल सूचक दृष्टान्त

हे पुरुष! स्त्री (पत्नी) को भेद नहीं दें। भेद देने से दुःख की खान स्त्री खिजाती है/दुखी करती है।।1।। चारुदत्त को आपत्ति प्राप्त हुई। धन का क्षय हो जाने पर (उसे) परदेश मिला।।2।। यशोधर के कपोल और कण्ठ विदीर्ण करने के पश्चात विष के लड्डू देकर मार डाला गया।।3।। गोपवती ने चोर को आलिंगन करने दिया, होंठ खाने दिये पश्चात् उसे मार डाला।।4।। रत्तादेवी ने पंगुल के लिए पति को तांत की रस्सी से लपेटकर और जलाकर सरोवर में फेंका।।5।। योगी के निमित्त से देवांगना ने पति को मारकर उसकी देह अग्नि में फेंकी।।6।। अपराधी के चरित्र को कौन गिनता है? वह मूर्ख है जो

कलकल ध्वनि करने वाली नदी को लांघता है।।7।। हे राजन! अपराधिनी स्त्रियों में प्रमुख हुई वीरवती (नारियाँ) को तुम्हें कौन कहता है।।8।।

घत्ता–शत्रु रूपी पक्षियों के लिए बाज पक्षी स्वरूप हे श्रेणिक! इस प्रकार जानकर मन से मानें। मन में संशय नहीं करें। स्त्रियों पर प्रतीति नहीं करें।।3-13।।

हिन्दी अनुवाद

श्री पंडित माणिक्क द्वारा साहु श्री महणा के पुत्र चौधरी देवराज के लिए रचा गया यह महाराजश्री अमरसेन का चरित चारों वर्ग की सुन्दर कथा रूपी अमृत रस से पूर्ण है। इसमें अमरसेन को राज्य की प्राप्ति तथा वइरसेन के द्रव्य का मागधी वेश्या द्वारा विभाजन का वर्णन करने वाला यह तीसरा परिच्छेद/संधि पूर्ण हुआ। कवि आशीर्वाद है कि–

जिसकी वाणी परोपकार करने में श्रेष्ठ है, जिसे सर्वदा श्रुत की चिन्ता रहती है, जिसका शरीर वृद्धजनों की सेवा में निरत है, जिसकी कीर्ति तीनों लोकों में व्याप्त है, जिसका धन निरन्तर नित्य सत्पात्र के दान रूपी उद्यम से सुशोभित होता है, वह देवराज नाम का गुण निधि पृथ्वीतल पर आनन्दित रहे।।

❑❑❑

चतुर्थ परिच्छेद

(4-1)

वइरसेन की तस्करों से भेंट एवं पारस्परिक वार्तालाप

ध्रुवक

आम्रवृक्ष से सम्बन्ध रखने वाली जब विद्या चली गई (तब) राजपुत्र वइरसेन मन में खेद-खिन्नित होता है। तब श्रुतज्ञान के बल से उसके द्वारा जिस-किसी प्रकार थोड़ा धैर्य धारण किया गया।।छ।।

राजपुत्र अपने मन से इस प्रकार चिंतन करता है कि इस समय वह तत्काल उद्यम करे।।1।। बिना उद्यम के कार्य की सिद्धि नहीं। उद्यम किए बिना ऋद्धि नहीं होती।।2।। राजपुत्र नगर में घूमता है। कहीं भी रहो अर्जित-कर्म दुख देते ही हैं।।3।। संध्याबेला में वह नगर के बाहर उपवन के एक निर्जन देवालय में गया।।4।। उसमें जहाँ वइरसेन बैठा, वहाँ कोई एक दूसरा भी होता है।।5।। वह जिनेन्द्र के चरणों का उपासक अपने देश, भाई और आठों ऋद्धियों का त्याग करके वहाँ नवकार मंत्र जपता है।।6।। उसी समय अर्द्धरात्रि में पाप की मूर्ति (वहाँ) चार चोर आते हैं।।7।। (उन्हें) घर-द्वार छोड़कर जयी योग में रत लीन विद्याओं सहित योगी विद्याधर की-पराये धन के लोभी, मलिन वस्तु के खाने वाले अति विरुद्ध वे पल भर में योगी को लूट करके देवालय में जहाँ कुमार बैठा था वहाँ आकर परस्पर में झगड़ते हैं।।8-10।। उसी समय संकेत करके यह चोरों को शीघ्र वहाँ ले गया (जहाँ वह था)।।11।। वहाँ रात्रि में कुमार के द्वारा चोरों से पूछा कि तुम क्यों झगड़ते हो, इष्ट बात कहो।।12।। तब कुमार पे पहरेदार को बुला लिया और शीघ्र अपने पास बैठा लिया।।13।। कुमार पूछता है-हे भाई! परस्पर में यहाँ किस कारण से झगड़ते हो।।14।। वह कारण एवं रहस्य मुझे बताओ, मैं निश्चय से तुम्हारा झगड़ा मिटाता हूँ।।15।।

घत्ता–रात्रि में कुमार के सुखकर वचन सुनकर और मन में धारण करके चोर कहता है–आप सुनें। बहुत गुणों से युक्त कथड़ी, पावड़ी और लाठी ये हमारी तीन वस्तुएँ हैं।।4-1।।

(4-2)

वइरसेन को चोरों से तीनों की वस्तुओं एवं उनके माहात्म्य की प्राप्ति

भव्य जनों के योग्य ये वस्तुएँ तीन हैं और हम लोग चार हैं अतः बँटवारा नहीं होता है।।1।। हे योगी! इसी कारण से (हम) झगड़ते हैं। कोई हमारा झगड़ा नहीं मिटाता है।।2।। हे सुमुख, भव्य मित्र! यदि जानकर हो तो हमारे ऊपर दया करके झगड़ा मिटाओ।।3।। उसके द्वारा कहे गए वचन सुनकर कुमार (वइरसेन) ने कहा–इन तीनों वस्तुओं के एक साथ गुण कहो।।4।। जिस प्रयोजन से बार-बार लगे हो हे राजन! मन में भय से दुःखी होकर कहता हूँ सुनो।।5।। वहाँ निर्जन वन की शमशान भूमि में एक योगी विद्या की साधना करता है।।6।। उस योगी ने छह मास पर्यन्त निरन्तर साधना की जिससे बहुत काल में सिद्ध होने वाली विद्या उसे सिद्ध हुई।।7।। विद्या ने संतुष्ट होकर इस योगी को कथरी, लाठी और पावड़ी दी।।8।। विद्या तीनों वस्तुओं के गुण कहकर चली गई। योगी के साथ हमने (भी) आश्चर्य (सहित) सुना।।9।। इस वन में छह मास पर्यन्त रहकर हम ही ने वहाँ योगी का घात किया।।10।। ये तीनों वस्तुओं को हम ले आये। हे मेरे भाई! अब जो जानो करो।।11।। उनके वचन सुनकर वइरसेन ने कहा–हे शुद्ध हृदय! मुझे जो प्रिय है (वस्तुओं का गुण) (वह) कहो।।12।। तब प्रधान चोर कहता है सुनो- इस कथरी से रत्नमणि झड़ते हैं।।13।। सूर्य के समान दीप्तिमान्, दरिद्रता के विनाशक सुख देने वाले (वे रत्न) प्रतिदिन झड़ते हैं।।14।। लाठी बादलों में बिजली के समान शीघ्रता से घूमती है।15।। वह सैन्यदल के सिर रूपी कमलों को खंड करके शीघ्र अपने स्वामी की हथेली

पर पुनः आ जाती है।।16।। जो पावड़ी पैरों में पहनता है वह उसकी क्षण भर में इच्छा पूर्ति करती है।।17।। वह क्षण भर में आकाश के मध्य में ले जाकर मर्कट के समान आकाश में घूमती है।।18।। पश्चात् वह वेग पूर्वक अपने स्थान पर आ जाती है। पावड़ी को आकाशगामिनी जानों।।19।।

घत्ता–उससे समस्त वृत्तान्त सुनकर और हृदय में धारण करके कुमार वहाँ चुप रहा। इस प्रकार उसे तीनों वस्तुएँ विधिपूर्वक संयोग से हाथ लग जाती हैं।।4-2।।

कहा भी है–दान, तप, वीर्य, विज्ञान और विनय में विस्मय नहीं करना चाहिए। पृथ्वी बहु रत्नों को धारण करने वाली है।।1।।

(4-3)

चोरों का पश्चाताप, वइरसेन को वस्तुओं की प्राप्ति एवं कंचनपुर-आगमन

ऐसा सुनकर कुमार वइरसेन ने कहा–तुम्हारा झगड़ा अभी तुरन्त मिटाता हूँ।।1।। मैं यहाँ सबको सुखकारी वस्तुएँ तुम चारों को बाँट देता हूँ।।2।। (वे चोर) उसे भव्य और उपकारी मानकर सुखपूर्वक पैदल ही अपने घर ले गए।।3।। कला और विज्ञानमति से युक्त राजपुत्र ने चोरों का कथन सुनने के पश्चात् कहा–तुम अपने स्थान घर पर मनोरथ की पूर्ति करने में समर्थ तीनों वस्तुएँ शीघ्र मुझे दो।।4-5।। उन्होंने वस्तुएँ दीं। वइरसेन ने वस्तुएँ अपने हाथ में लेकर पावली स्वस्थ चित्त से चरणों में पहनी।।6।। लाठी हाथ में लेकर रत्न देने वाली कथरी हृदय पर पहनकर वह धूर्त हर्ष युक्त होकर शीघ्र आकाश (मार्ग) में गया और पर्वत, नदी, समुद्र तथा नगर वीरों में प्रधान वीर और धूर्तों में प्रधान धूर्त वह शीघ्र कंचनपुर पहुँचा।।7-9।। पूर्व में सुपात्र को दिए गए दान रूपी शुभ कर्म से उसे सम्पत्ति प्राप्त होती है।।10।। प्रधान चोर तब वहाँ दुखी होता है, सिर कूटता है और हाथ मलता रह जाता है।।11।। (वह कहता है) वह मायावी चोरों

को मूसकर (उन्हें) आकाश से जा रहा है। हम यदि ठग हैं तो वह महाठग है।।12।। (वे चोर पश्चाताप करते हुए कहते हैं) हाय! हाय! हे विधाता! तूने हम पर यह क्या किया? मन-इच्छित फल देने वाली वस्तुएँ देकर क्षण भर में ले लीं।।13।। छह मास पर्यन्त भूख-प्यास आदि के अनेक दु:ख सहकर और वन में रहकर योगी का वध करके तीन विद्याएँ प्राप्त की थीं, जिन्हें छल करके दूसरा क्षण भर में ले गया।।14-15।। अब क्या करूँ, किससे यह वार्ता कहूँ? वह धूर्त कहाँ गया, हे भाई! नहीं जानता हूँ।।16।। ऐसा विचार करके वे अपने-अपने घर गए। इसके पश्चात् कुमार हर्षित चित्त से पवित्र कथरी को झाड़ता है, सात सौ रत्न पृथ्वी पर गिरते हैं। उन्हें लेकर गुणों से गम्भीर वह दुष्ट कुमार नगर-वासियों के साथ घूमता है और जुआ खेलता है।।17-19।। अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार के भोग भोगता है, अनेक प्रकार के दान देकर नगरवासियों का मनोरंजन करता है।।20।।

घत्ता—कामदेव के समान रूपवान्, अगणित वैभवधारी, स्त्रियों के हृदय में भ्रमर के समान कुमार दूसरे दिन वेश्या को दिखाई दिया। याचक उसका यश-गान करते हैं।।4-3।।

(4-4)

वइरसेन के वियोग में वेश्या-पुत्री की स्थिति, पश्चाताप, वइरसेन का वेश्या के घर पुनरागमन एवं अपने खोये आम्रफल की प्राप्ति का चिन्तन

वह वृद्ध वेश्या वइरसेन जहाँ था उस स्थान गई। वह अमृत तुल्य वचनों से कहती है—हे वइरसेन! सुनो।।1।। मेरी मागधी पुत्री तुम्हारे वियोग के शोक से सफ़ेद वस्त्र पहनती है।।2।। अपनी चोटी एवं केशों को खोल रखा है, न नहाती है, न खाती है। प्रिय वेष-भूषा रहित है।।3।। जब से आपका वियोग हुआ है तब से वह बोलती (भी) नहीं है (केवल) नेत्रों से निहारती है।।4।। हे मेरे पुत्र! तुम्हारे

विरह से चारपाई (खाट) की पाटी लेकर सोयी है।।5।। हे कुमार! प्राण निकल कर जाने के पहले शीघ्र पहुँचकर उद्धार करो।।6।। ऐसा सुनकर वइरसेन वहाँ गया जहाँ पाप की खदान उस कुट्टिनी वेश्या की पुत्री (थी)।।7।। किवाड़ से वह वेश्या की पुत्री कहती है हे कुमार सुनो–मुझ पापिनी ने (इस) तरह बुरा किया जो कि चन्द्र के समान मुखवाले तुझे निकाला। हे देव! आप मेरा अपराध क्षमा करो।।8-9।। मुझ दुर्मति के द्वारा कर्म किये गये वे कहीं मेरे माथे पड़े।।10।। तुम्हें दुखाकर मेरी पुत्री इस स्थिति में आ गई है कि वह रात-दिन रोती है।।11।। यह बालिका शरीर का शृंगार नहीं करती, न लम्बे बालों की चोटी बाँधती है।।12।। कहा भी है–कौसंभ-रेशमी वस्त्र, काजल, काम (रति क्रिया), कर्ण-कुण्डल और कार्मुक-कार्य करने के योग्य-ये पाँच ककार पति-विहीन स्त्रियों के दुर्लभ होते हैं।।1।।

ऐसा सुनकर कुमार ने मन से विचारा कि यह पापिनी मुझे अब पुनः कैसै छलती है/छल सकती है।।13।। डब-डबाये नेत्रों से यह बहुत दम्भ करती है। इसी के द्वारा मेरी हृदय प्रिय वस्तु छली गई है।।14।। इसी ने आम्र-फल का भेद लेकर मुझे हाथ पकड़कर अपने घर से निकाला है।।15।। अब क्या करूं, किससे ये बात कहूँ, नहीं जानता वह धूर्त भाई कहाँ गया। यह विचार कर वे अपने अपने घर पहुंचे, इसके पश्चात कुमार हर्षितचित पवित्र कंथे को झाड़ता है और सात सौ रत्न प्रथ्वी पर गिरते है।।16-17।। उस कंथरी के झड़ाने से एक बार में 700 दिव्य रत्न पृथ्वी पर गिरते थे।।18।।

घत्ता–अब उसे इसका फल चखाता हूँ। वाक् संयम से आविद्ध करके सभी का प्रतिकार लेता हूँ। यत्न और उपाय करके छल बलपूर्वक मेरे लिए हुए आम्रफल को इससे शीघ्र ले लेता हूँ।।4-4।।

(4-5)

वइरसेन के प्रति वेश्या का दुर्भाव एवं उसकी पुत्री कामकंदला का सद्भाव-वर्णन

निश्चय से स्थिर-कीर्ति स्थिर कार्यों से होती है। संसार में जीव भी स्थिर भव्य और अस्थिर भव्य कर्म से ही होता है।।1।। भव्य सुपात्रों को देने से दान स्थिर होता है, शत्रु को भाई बनाने से मैत्री स्थिर होती है।।2।। इसी वेश्या ने भेद लिया है। अपने कार्य के लिए कपट रचता हूँ।।3।। ऐसा विचार कर हर्ष के मारे चित्त से वह धूर्त वइरसेन सुखपूर्वक वेश्या के घर रहता है।।4।। वेश्या के यहाँ कई दिन बीत जाने पर उस वेश्या ने अपनी पुत्री से कहा।।5।। हे पुत्री! अपने जार स्वामी से शीघ्र पूछो–नदी के प्रवाह के समान सम्पत्ति तुम्हारे पास कहाँ से (आती है)।।6।। छल करके उसकी सम्पत्ति ले लें और व्यभिचारी को अपने घरा से काढ़ दें/निकाल दें।।7।। जैसे राजा की देश-पिपासा शान्त नहीं होती, दरिद्रियों के निधियाँ उत्पन्न नहीं होतीं।।8।। अग्नि-नगर और वन को नहीं छोड़ती अर्थात् सभी को जला देती है, पतिव्रता जैसे अपने शील का खण्डन नहीं करती।।9।। जैसे समुद्र बहुत नदियों से तृप्त नहीं होता, जैसे यतीश्वर कर्म-समूह थे काटता है।।10।। जैसे इन्द्र की जिनेन्द्र के दर्शन की प्यास तृप्त नहीं होती, वैसे ही हे पुत्री! हमारी व्याभिचारी के धन से तृप्ति नहीं होती है।।11।। व्यापार के बिना लक्ष्मी नहीं होती। यह स्वेच्छानुसार प्रतिदिन दान देता है।।12।। ऐसा सुनकर (वेश्या की पुत्री) कुन्दलता ने कहा–हे माता! तब तो तेरी जीभ के सौ टुकड़े हों जो तू हे दुष्टा! ऐसे वचन कहती है। हे पापिनी! फिर इसके पीछे लग गई।।13-14।। पहले लिए हुए इस आम्रफल और इसकी आम्रफल रूप सूर्यगामी निधि निश्चय से उसे दे दे।।15।। यह मनुष्य प्रतिदिन हमारे घर विविध प्रकार की बहुत सम्पदा अर्जित करता है।।16।।

घत्ता–इसका बुरा न कीजिए, इसे बहुत सुख दें, इसके समान

दूसरा मनुष्य नहीं है। स्त्रियों के लिए दुर्लभ यह मेरे मन को प्रिय है। इसे पाकर एक क्षण के लिए (भी) मत छोड़ो।।4-5।।

(4-6)

वेश्या की वइरसेन के साथ कपटपूर्ण कन्दर्प-थाण-यात्रा तथा वेश्या का पावली लेकर नगर-आमगन वर्णन

हे दुष्टा! मेरे नेत्रों के आगे से चली जा। हे लोभिनी! तेरे माथे पर वज्रपात हो।।1।। पुत्री के ऐसे दुखपूर्ण वचन सुनकर वृद्धा वेश्या को (वे) सुखकर नहीं लगे।।2।। बिलखती उस वेश्या स्त्री का मुख काला पड़ गया। वह बेचारी अपने मन में विचारती है।।3।। पुत्री ने ऐसा किया कि मेरी नहीं चलती है अतः अब उस कुमार को बलपूर्वक भेद डालकर भेदती हूँ।।4।। सौन्दर्य से स्त्री कामदेव को भी जीत लेती है। वह वृद्धा कुमार से कहती है।।5।। तुम हजारों का व्यापार नहीं करते फिर भी प्रतिदिन तुम्हारे पास धन दिखाई देता है।।6।। स्मरण करके मुझ मानिनी से सत्य कहो जिससे मेरे हृदय को बहु सुख होवे।।7।। कहा भी है–

अबला स्त्री, पका हुआ अनाज, कृषि योग्य खेत, फलित वृक्ष ये चार तथा पाँचवा लक्ष्मी समूह रक्षा करने योग्य होते हैं।।1।।

ऐसा सुनकर वृद्धा वेश्या से कहा है–निश्चय से मेरे पास आकाश गामी पावली है।।8।। उनके प्रसूत तेज से क्षण भर में तीनों लोकों का भ्रमण करके सम्पत्ति ले आता हूँ।।9।। देव, मनुष्य और पृथ्वी पर रहने वाले विविध प्रकार के असंख्य जीव दिखाई देते हैं।।10।। (मेरे) आवागमन को कोई नहीं जानता है। पुण्य की हेतु बहु सम्पति का उपभोग करता हूँ।।11।। उस कुमार से ऐसा सुनकर वेश्या छल करती है, (वह कहती है–कुमार)! मेरे मन के मनोरथ निःशेष हों।।12।। कुमार सुनो-मुझ पर दया करो, तुम्हारे जाने पर मैंने मनोती की थी यदि कुमार शीघ्र घर आ जाता है और मेरे चित्त की वेदना यदि शीघ्र दूर हो जाती है तो तुम्हारे साथ में कंदर्पदेव की यात्रा

शीघ्र करूँ।।13-15।। (मैं) इसी पर्व पर पूजन करूँ किन्तु शीघ्र शक्य नहीं वह दुर्गम् है।।16।। कामदेव का मन्दिर समुद्र के बीच में है। हे सुख निदान! देव-वन्दना कैसे करूँ।।17।। तुम्हारे चरणों की कृपा से देव को नमस्कार करूँ, दया करके यात्रा हेतु वहाँ ले चलो।।18।। ऐसा सुनकर कुमार ने वहाँ विचार किया–इसे अभी समुद्र में फेंकता हूँ।।19।। मेरे हृदय की शल्य शीघ्र चली जाती है। मैं गिराकर हृदय शल्य मिटाता हूँ।।20।। यदि समुद्र बीच मिथ्यात्वी देव है, तो गमनागमन नहीं है और जिनागम में कोई देव भेद नहीं सुना है।।21।। अपने कार्य के लिए यदि ले जाती है तो लुटेरिन को वहीं छोड़ूँ, वहीं मरे।।22।। पावली के प्रभाव से वृद्धा दासी को घर से सिर पर लेकर वह क्षण भर में सुखपूर्वक आकाश में चला गया।।23।। पावली छोड़कर वहाँ देवसमूह को देखने वह तत्काल चला गया।।24।।

घत्ता–इधर वृद्धा वेश्या पावली पर चढ़कर आकाश में उड़ गई और पुत्री के आवास स्थान पर गयी तथा सुखपूर्वक वह दुष्टा निश्चिन्त होकर सुखदायी निवास स्थान में रहने लगी। कुमार वहीं रहा।।4-6।।

(4-7)

छलपूर्वक वइरसने की पावली लेकर वेश्या का कामदेव-मंदिर से भाग आना तथा किसी विद्याधर का आकर वइरसेन को सहयोग करने का वचन देकर धैर्य बंधाना

उस समय कुमार ने कुगति के कारणभूत मिथ्यात्वी मदनदेवी को प्रणाम नहीं किया।।1।। कुमार जब मंदिर से निकला, उस समय उसे वेश्या और पावली दिखाई नहीं दी।।2।। कुमार विचारता है कि–मैं दुबारा छला गया हूँ। वेश्या के अधम चरित को कोई नहीं जानता है।।3।। वह (वेश्या) लोक में छोटा या बड़ा मनुष्य नहीं जानती, (केवल) द्रव्य का विचार करती है।।4।। वेश्या दामाद हो या इतर मनुष्य। वह धनी पुरुष को ही सम्मान देती है।।5।। जो धनहीन

होता है वह उसे शीघ्र त्याग देती है, हाथ पकड़कर घर से निकाल देती है।।6।। लोभ से अन्धी होकर अन्य-अन्य द्रव्य लेती है और शरण देकर अन्य-अन्य का प्रसार करती है।।7।। वेश्या अपनी नहीं होती—यह जानकर ही यतीश्वर (अपने) पद में रहकर उसे त्याग देते हैं।।8।। जो दूसरों को पाप-भाव से देखते हैं वे बन्धन, ताड़ना और मार पाते हैं।।9।। जो कर्म किये हैं वे विफल नहीं होते। निश्चय से वे बिना जाने-समझे माथे आ पड़ते हैं।।10।। कुमार ऐसा अपने मन से विचार करके देव-मन्दिर में चिन्ता करता हुआ सुखपूर्वक रहता है।।11।। इसी बीच शुद्ध परिणामी एक विद्याधर आकाश से उतरकर देव-मन्दिर में आया।।12।। वहाँ विद्याधर ने मदन देवता की वन्दना की। अष्ट द्रव्यों से पूजा और स्तुति करने के पश्चात् विद्याधर के द्वारा वइरसेन देखा गया तथा कहाँ से आये हो? पूछे जाने पर वइरसेन के द्वारा कहा गया।।13-14।। हे आकाशगामी! मैं कंचनपुर रहता हूँ। हे स्वामी! यहाँ छल करके वेश्या लाई है।।15।। मदनदेव की यात्रा के निमित्त आकाश से पावली ने मुझे गमन करने दिया।।16।। निकृष्ट दुष्टा वेश्या के द्वारा मैं ठगा गया हूँ। आकाश से जाने में इष्ट पावली लेकर वह दुष्टा छल करके आकाश में चली गई। हे विद्याधर! क्या करूँ, आकाश-गमन से भ्रष्ट हूँ।।17-18।। अब मेरा घर जाना कठिन जानो, भले ही मेरा मरण होवो।।19।।

घत्ता—ऐसा सुनकर बहु विद्याधरी ने कहा—कुमार, खेद मत करो, धैर्य धरो। मैं अपने विमान से तुम्हें तुम्हारे स्थान पर ले चलता हूँ। यह अपने चित्त में धारण करो, डरो नहीं।।4-7।।

कहा भी है—वेश्या, चोर, वैद्य, भाट का पुत्र, राजा, लोभी और शिशु इन सातों द्वारा पराया दुःख नहीं जाना जाता।।छ।।

(4-8)

वइरसेन का रासभ रूप में परिवर्तित होना तथा विद्याधर द्वारा मनुष्य बनाया जाना

विद्याधर कहता है—हे गुणों के सागर, भूमिगोचर! आप कुछ

दिन कामदेव के मन्दिर में रहें। मदनदेव की मूर्ति को आनन्दित मन से पूजें, मन की इच्छानुसार घूमना नहीं।।1-2।। देव-मन्दिर की पश्चिम दिशा में दो वृक्ष हैं निश्चय से वहाँ नहीं जाना और न उनकी ओर देखना।।3।। एक वृक्ष पर भयंकर व्यंतर और दूसरे वृक्ष पर दुष्ट विचित्र राक्षस रहता है।।4।। तुझ पर दृष्टि पड़ते ही नहीं छोड़ेगा, तिल के बराबर टुकड़े करके खा जावेगा।।5।। इसलिए हे नृपति! तुम्हारे मन को प्रिय हो तो भी विद्याधर की बात मानकर न देखना और न जाना।।6।। ऐसा कहकर विद्याधर अपने कार्य वश चला गया। जिनेन्द्र-भक्त राजपुत्र सुखपूर्वक रहता है।।7।। दूसरे दिन कुमार हर्षित चित्त से वन में (वहाँ) गया (जहाँ) से वृक्ष स्थित थे।।8।। कौतूहलवश देखने वह वहाँ गया। एक वृक्ष के सुन्दर फूल लिये।।9।। कुमार अपनी नासिका से गधा बनाने में अति समर्थ वे (फूल) सूँघे।।10।। फलों के प्रभाव से कुमार गधा बन गया। कर्म-कृत मनुष्य का शरीर लुप्त हो गया।।11।। दूध पीने वाला गर्धभी का वह पुत्र अपनी इच्छानुसार नदी के नीचे की गीली भूमि में जाकर (अपना) शरीर धोता है/लोटता है।।12।। वह दूसरे-दूसरे कर्म करते हुए चिरकाल के विविध प्रकार के अन्य-अन्य जीवों में रम जाता है।।13।। पन्द्रह दिन बीतने पर विद्याधर आया। उसे सुन्दर शरीर वाला राजपुत्र (कुमार) दिखाई नहीं दिया।।14।। वहाँ उसे पों-पों करते हुए/रेंकते हुए (यह गधा) दिखाई दिया। विद्याधर ने तुरन्त इसे मनुष्य से (गधा) हुआ जान लिया।।15।। (विद्याधर ने) गधे के अशुभ को नष्ट करने वाला दूसरे वृक्ष का फूल लेकर उसे सुँघाया।।16।। उसके प्रभाव से वइरसेन अपना पूर्व शरीर पाकर संक्षेप में कहता है।।17।। उसने विद्याधर को बार-बार प्रणाम किया। विद्याधर रुष्ट होकर विष के असर से बेचैन वइरसेन से कहता है।।18।। मैंने रोका था, यह क्या कर्म कर लिया, हिताहित का मर्म नहीं जाना।।19।। वइरसेन कहता है–हे आकाशगामी स्वामी! सुनिए ऐसा कर्म नहीं करूँ।।20।। हे राजन! अब मुझ पर क्षमा करो, तुम्हारे समान मेरा सज्जन भाई नहीं है।।21।।

घत्ता—आकाशगामी विद्याधर से कुमार कहता है—हे स्वामी! दया करके विधाता द्वारा पृथ्वी पर निर्मित दोनों इन वृक्षों के गुणों को खोलकर मुझे कहियेगा।।4-8।।

(4-9)

वइरसेन का दोनों वृक्षों के फलों का प्रभाव ज्ञात करना तथा वेश्या को उसके किये गये छल का दण्ड देने हेतु विचार-मन्थन-वर्णन

वइरसेन का प्रश्न सुनकर आकाशगामी प्रजा का पालक (विद्याधर) कहता है—यहाँ ये दोनों वृक्ष मैंने लगाये हैं।।1।। एक (वृक्ष) के फूल को लेकर (जो) सूँघता है (वह) तत्काल गधा हो जाता है।।2।। (जो मनुष्य) दूसरे वृक्ष के फूल को सूँघता है (वह) अति सुन्दर अपने (पूर्व) रूप में दिखाई देता है।।3।। यह विद्या गधा और मनुष्य करने वाली, शत्रु का मान-मर्दन करने वाली तथा अर्थ-कार्य करने वाली है।।4।। विद्याधर का कथन सुनकर राजपुत्र ने कहा—हे स्वामी! मैं यहीं रहता हूँ।।5।। तब तो (इसके पश्चात्) मुझे शीघ्र घर पहुँचाओ। अपने पुण्य की सहायता से परिवार में ले चलिए।।6।। (विद्याधर कहता है) हे वत्स! सुनो! पाँच दिन यहीं रहो, निश्चय से मैं अपने घर से लौटकर आता हूँ।।7।। ऐसा कहकर जब विद्याधर अपने घर गया (कुमार) पाँच दिन सुखपूर्वक रहता है।।8।। वहाँ कुमार अपने मन से विचार करता है कि सुखपूर्वक इन दोनों वृक्षों के फूल लेकर इनके तेल से दासी (वेश्या) के विभिन्न रहस्य को खोल दूँ।।9-10।। सुर-असुर और विद्याधर जन देख लें। विधि के संयोग से इसके पश्चात् मैं भाई से मिलूँ।।11।। छल बल पूर्वक मैत्री भाव करके निश्चय से पावली का जोड़ा और आम्रफल लेकर उसे गधा बनाकर और उसके ऊपर चढ़कर जहाँ राजा और नगर के लोग हों वहाँ ले जाकर नगर में दौड़ाऊँ, पृथ्वी पर बलपूर्वक राजा की सेना को जीतूँ।।12-14।। इसके पश्चात् जहाँ राजा हो वहाँ महाजनों को लेकर पैदल उनसे मिलूँ।।15।। वेश्या के सम्बन्धियों द्वारा लाया गया

राजा यदि उस वेश्या को छुड़ाता है, तो छोड़ूँ।।16।।

घत्ता–कुमार ने भले दोनों वृक्षों के फूल अपनी गाँठ में छिपा लिये। पाँच दिन बीतने पर अवधि का स्मरण करके विद्याधर वहाँ आया।।4-9।।

(4-10)

वइरसेन का कंचनपुर नगरामन एवं वेश्या का कुटिल वार्तालाप

विद्याधर कुमार को लेकर कंचनपुर गया और उसने उसे उसके घर के द्वार पर स्थापित कर दिया।।1।। इसके पश्चात् बैरियों को दुस्साध्य वइरसेन कंचनपुर नगर में घूमता है।।2।। वहाँ (वह) जब तक विविध सुख-सम्पत्ति का भोग-विलास करता है उसी समय किसी दूसरे दिन व्याभिचारियों की लूटेरिन वेश्या को वहाँ कुमार दिखाई दिया।।3-4।। वह वहाँ एक क्षण मौन रही, (उसने मन में सोचा) समुद्र लांघकर यह यहाँ कैसे आया?।।5।। उसने कपटपूर्वक वइरसेन से पूछा/कहा–मेरी पुत्री के जीवन हेतु घर आइये।।6।। इसके पश्चात् उस वेश्या ने कुमार के साथ कपट रचना की। उस दुष्टा वेश्या ने जान बूझकर किवाड़ बन्द करके पुत्री से हाथ पकड़कर अपने सभी अंग बंधवाये।।7-8।। कुमार के पास बैठकर मदिरा पान में आसक्त अति लोभिनी वह निज वृत्त कहती है।।9।। उसकी स्थिति को देखकर कुमार ने कहा–पट्टी किस कारण से बँधी है।।10।। मेरे मन का संशय दूर करो और यदि बैरी जीवित हो तो मुझे कहो।।11।। वइरसेन का कथन सुनकर वेश्या कहती है–हे कुमार। मेरे दुखों को सुखपूर्वक सुनिए।।12।। जब आप मदनदेव के मन्दिर में भक्तिपूर्वक देवता की वन्दना करने सहर्ष प्राप्त हुए/गए, इसी अन्तराल में एक विद्याधर आया और वह पापी तुम्हारी पावली तथा मुझे लेकर आकाश में दौड़ गया और दुर्लंघ्य समुद्र को पार करके मैं कंचनपुर में छोड़ी गई।।13-15।। कृत कर्मों से जीव कहाँ नहीं गया। वह निर्भय तुम्हारी पावली ले आकाश से चला गया।।16।। मेरे सभी

अस्थि-बन्धन तोड़ डाले। हे भव्य! इसी कारण कपड़ा (पट्टी रूप में) बाँध रखा है।।17।। वेश्या के वचन सुनकर कुमार ने कहा–मुझे पावली का दुःख नहीं है ऐसा जानो।।18।।

घत्ता–(वेश्या कहती है)–नेत्रों के लिए सुखकर हे कुमार! तुझे जीवित पाकर मेरे हृदय में हर्ष उत्पन्न हुआ है। शारीरिक शृंगार करें, तुम्हारी पीड़ा का कारण पावली के जाने का पश्चाताप न करें।।4-10।।

(4-11)

वइरसेन का कंचनपुर आगमन वृत्त एवं कामदेव-मंदिर से साथ में लायी गयी वस्तुओं का वेश्या से कथन

तुम्हारे जीवित रहने से मुझ वेश्या के मस्तकस्थ मन इच्छित सभी कार्य शीघ्र पूर्ण होंगे।।1।। वेश्या उस दुष्ट धूर्त (कुमार) को वचनों से फँसाकर/ग्रसकर सहर्ष घर ले गई।।2।। वह कुमार बहुत प्रकार के रति-रस रूपी सुख को स्वेच्छानुसार भोगता है। नगर में घूमता है और युवकों से क्रीड़ा करता है।।3।। स्वर्ण-वर्ण के समान शरीरवाला, गम्भीर त्याग से याचकों का मन आनन्दित करता है।।4।। किसी दूसरे दिन वेश्या ने कुमार से कहा–कैसे आये? मेरे हृदय को कहो।।5।। वेश्या के वचन सुनकर वइरसेन (कहता है)–अर्हन्त ने बाज पक्षी को जो चिड़िया निर्मित की है (वह उसे प्राप्त होती है)।।6।। जिसने समय पर अमित दान दिया है पुण्य से उसी के द्वारा कामधेनु का दोहन किया जाता है।।7।। अमित जिनेन्द्र की भक्ति, अमित शीतल शुभ वचन सुख की निधि है।।8।। गुणियों की गोष्ठियों और परमार्थ करने वाले साधुओं का संग करें।।9।। इससे भव्य जनों के घर संतोष-प्रदाय शुद्ध सुन्दर दिव्य सम्पदा होती है।।10।। जन जन से प्रशंसित, यश और गौरव प्राप्त होता है। वंश में कुलभूषण पुत्र होता है।।11।। यह सब शुभ कर्मों के करने से होता है, ज्ञानी यतीश्वर ऐसा कहते हैं।।12।। इसके पश्चात वेश्या इससे कहती है–हे भव्य! कहो–मदनदेव के मन्दिर में कौन द्रव्य प्राप्त हुआ।।13।। हे भव्य वइरसेन! अब मुझे वह बताओ जो प्राप्त किया गया हो, जिससे मुझे

सुख प्राप्त हो।।14।। हे रमणी! सुनो! (वइरसेन ने कहा) मैं न देवालय में रहा और न मैंने मदन देवता की आराधना की।।15।। भली प्रकार संतुष्ट हुआ देव मेरे पास आया। उसने कहा–कुमार! जो तुझे भावे वह वर माँगो।।16।। मैंने कहा–यदि संतुष्ट हों (तो) मुझे द्रव्य देकर सुलभ कराओ और मुझे घर स्थापित करो/पहुँचाओ।।17।।

कहा भी है–निम्न वचन-भाषी होकर जिसने मनुष्यता का पहले विनाश कर लिया है, मिथ्याध्यानी वह विधिपूर्वक शुद्धमार्ग से नहीं चलता है।।1।।

ऐसा कहने के पश्चात् (वेश्या द्वारा) कुमार से पूछा गया अन्य अपूर्व क्या लाये हैं? हे मेरे हृदय के लिए प्रिय! वह शीघ्र कहो! ऐसा सुनकर उसने कहा है–तुम्हारे मन को प्रिय अपूर्व औषधि मुझे देव ने दी है वह सभी स्त्रियों में सर्वाधिक सुन्दर (बना देती है)।।18-20।। (वेश्या कहती है)–यदि ऐसा करती है तब शीघ्रता कीजिए। (कुमार विचारता है)–युक्तिपूर्वक हिंसाचार करूँ।।21।। पहले इसने निश्चय से मेरे पंखों का लुंचन किया है। मैं (इसके) शीश को मुड़वाता हूँ।।22।।

घत्ता–कामजयी कुमार ऐसा विचार कर वृद्धा वेश्या से कहता है–सुनो, यक्ष के द्वारा मुझे सुन्दर फूल दिए गए हैं। अपनी नासिका से स्त्री तत्काल सूँघती है।।4-11।।

(4-12)

वइरसेन द्वारा वेश्या का गधी बनाकर नगर भ्रमण कराना तथा वेश्या के परिजनों द्वारा विरोध-प्रदर्शन

इनसे वृद्ध स्त्री नवयौवन को प्राप्त हो जाती है। यह स्वर्ग से उतरकर नीचे आई देव-अप्सरा के समान प्रतीत होती है।।1।। उसके समान इन्द्र, फणीन्द्र, नरेन्द, कामदेव और यम की स्त्री भी दिखाई नहीं देती।।2।। कुमार के ऐसे वचन सुनकर (वेश्या) आनन्दित मन से कहती है–कुमार! तत्काल मुझे औषधि दो।।3।। वेश्या की प्रार्थना सुनकर वीरों में वीर और धूर्तों में धूर्त प्रजापति राजपुत्र (कहता है)–हे

मृगनयनी! मैं तुम्हारे लिए (ही) लाया हूँ। हे चतुर स्त्री! लो, शीघ्र फूल सूँघो।।4-5।। वह (वेश्या) उसे सूँघती है और शीघ्र ही गधी हो जाती है। खराब वचनों को कहता हुआ (कुमार तब) दण्ड लेकर उसे (गधी को) रस्सी से बंधवाता है और सुखपूर्वक उसके ऊपर सवार होता है।।6-7।। लाठी से पीट-पीट कर घर से बाहर निकलता है और पीटते हुए सम्पूर्ण नगर में घुमाता है।।8।। वेश्या के परिजन और नगर के लोग देखते हैं।।9।। सभी पुरवासियों को भयभीत करती हुई पों-पों करती गधी घूमती है।।10।। पल भर में अपनी माता है सुनकर कुन्दलता (वेश्या की पुत्री) देर करती हुई घर से बाहर नहीं निकली।।11।। (वह कहती है) कुमार ने भला किया, मुझे अच्छा लगा, जो पापिनी ने किया वह (उसने) पाया।।12।। (जो) जैसे करता है वैसा ही पाता है, दूसरों को दुख देने वाले को दैव कष्ट देता है।।13।। ऐसा जानकर किसी का बुरा न करें। इस पाप से नरक प्राप्त होता है।।14।। वहाँ सभी नारकी मारते हैं, (जीव) पाँच प्रकार के दुख सहता है।।15।। इसी बीच वेश्या के परिवार के लोगों ने कोतवाल और सिपाही को बुलाया।।16।। उन्होंने कहा–हमारी विनती सुनिए, हम दुखी हैं, हमारी परम प्रिय (वृद्धा वेश्या) को (इसने) गधी बनाया है।।17।। यह कोई व्याभिचारी एवं धूर्त पृथ्वी पर फिरता है और नगर की स्त्रियों को तत्काल इकट्ठा कर लेता है।।18।। घर के परिजनों को भ्रष्ट करने वाले उस निकृष्ट, परदेशी को शीघ्र मारो।।19।। उनके ऐसा कहने से कुटुम्ब के बालक उठे और उन्होंने कुमार को चारों दिशाओं से घेर लिया।।20-21।। (वे पूछने लगे) रे पापी! किस विधि से वेश्या स्त्री को तुमने गधी बनाया है?।।22।। रे निंद्य! उसका जो रूप बनाया है वह छोड़ो, अन्यथा रे दुर्जन! यम का कुठार पड़ता है।।23।।

घत्ता–तुम्हें जो उचित हो वह करो। तूने ही वेश्या को गधी बनाया है। तुम पापी हो, दूसरों को सताने वाले हो, हम स्वयं तुम्हारा सिर काट देते हैं।।4-12।।

(4-13)

वइरसेन का आक्रमण, राजसेना का पलायन एवं बड़े भाई से मिलन

(वेश्या के पक्षधरों के आक्रोश पूर्ण वचन) सुनकर राजपुत्र वइरसेन कुपित हुआ। (वह) वेश्या के वंश के बालकों को पीछे यम के समान लग गया।।1।। बिजली से समान (शीघ्रगामी) (उसने) अपनी लाठी छोड़ी! वह उनके सिर पर ऐसे घूमती है जैसे चक्र घूमता है।।2।। उसे हाथ में लेकर उसके द्वारा सभी मारे-पीटे गये। सम्पूर्ण नगर में कोलाहल हो गया।।3।। कोई मारे जाते हैं, कोई भाग जाते हैं और कोई काँपने लगते हैं। कोई शत्रु शरण में आकर पैरों में पड़ जाते हैं।।4।। कोई कहता है–हे देव! छोड़ दो, तुम्हारी सेवा करते हैं। हे उपमा रहित! हमें जीवन दान दो।।5।। कोई राजा के पास जाकर चिल्लाये हे पृथ्वी के स्वामी! बैरी को त्रास देने वाले! हमारे वचन सुनो, हे स्वामी! सूर्य के समान तेजवान! एक धूर्त तुम्हारे नगर में आया है।।6-7।। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों निगलकर खाने को काल आया हो (वह) मागधी वेश्या को दु:खदायी हुआ है।।8।। गधी बनाकर और उस पर सवार होकर वह उसे नगर में घुमाता है। इतना ही नहीं, वह तुम्हारे कोतवाल को (भी) मार रहा है।।9।। उसके भय से नगर निवासी भाग गये हैं। उस उन्मादी ने सिंह के समान भ्रमण किया है।।10।। ऐसा सुनकर राजा कुपित हुआ। (उसने) बैरी के विरुद्ध अपनी सेना छोड़ दी।।11।। वे (सैनिक) विरोधी को मारो मारो कहते हुए अशुद्ध वचन (गालियाँ) भी बोलते हैं।।12।। उसे (वइरसेन को) कहते हैं–रे निर्दयी, पापी, दुर्जन! (तुमने) कोतवाल को क्यों मारा?।।13।। वेश्या को तुमने गधी क्यों बनाया? (यह) तुम्हारी सम्पत्ति (विद्यायें) यम-दूत के समान हैं।।14।। वइरसेन ने सुखपूर्वक दु:खकारी वचन सुनकर सभी के मुँह पर लाठी मारी।।15।। कोई भाग कर राजा की शरण में गये, कोई लज्जित होकर तप करने वन गये।।16।। भगदड़ मच गयी। पुरजन जैसे भाग गये जैसे सिंह के

भय से स्थित हस्तिदल भाग जाता है।।17।। शरणागतों की पुकार सुनकर नवकार (णमोकार मंत्र) धारण करके राजा सेना लिए बिना ही तुरन्त यम के रूप में उस ओर दौड़ा जहाँ जयश्री प्राप्त शत्रु (वइरसेन) स्थित था।।18-20।। अति क्रोधित होते हुए उसने कहा—मारो-मारो! अरे! यम के आगे प्राप्त होकर पहुँचकर कहाँ जाते हो?।।21।।

घत्ता—उसके (राजा के) वचन सुनकर (वइरसेन) पुलकित होकर गया। उसको सुखपूर्वक बड़ा भाई दिखाई दिया। राजा उसे देखता है और यह मेरा भाई है (ऐसा जानकर) राजा होने का मान त्याग करके (उससे) सुखपूर्वक मिला।।4-13।।

अनुवाद

भली प्रकार कही जा सकने योग्य चारों वर्ग की कथा रूपी अमृतरस से पूर्ण शाह महणा के पुत्र देवराज चौधरी के लिए पण्डित माणिक्कराज द्वारा रचे गए इस महाराज श्री अमरसेन चरित में अमरसेन वइरसेन मिलन वर्णन नाम का यह चौथा परिच्छेद पूर्ण हुआ।।संधि।।4।। जिनके ऊपर उठाये गये मुद्गर रूपी योग से महान् अज्ञान अन्धकार क्लेशदायी अनादि का कर्मबन्ध चूर-चूर हो कर नाश जाता है, नित्य स्त्री-पुत्र, धन-धान्य देने वाले पवित्र भव्य तपोधन वे सप्तर्षि संज्ञाधारी हमारा कल्याण करें।।1।।

जब तक सिद्ध और शिवश्री है, राजा से सम्मानित देवराज चिरायु हो, सदा आनन्दित रहे और उनकी सदा वृद्धि हो।।2।।

कहा भी है—साधुओं के दर्शन, शीलवती स्त्रियाँ, धर्मयुक्त राजा और चारित्रवान संयमी प्रशंसनीय होता है।।1।।

❑❑❑

पंचम परिच्छेद

अमरसेन-वइरसेन का मिलन, कुशल-क्षेम-वार्ता एवं वेश्या के गधी बनाये जाने का वइरसेन द्वारा बताया जाना

ध्रुवक

इसी बीच नगर के लोग अपने मन में हर्षित हो वहाँ आये जहाँ राजाओं के पूजित राजा अमरसेन अपने भाई सहित स्थित थे। पुरवासियों ने उन्हें नमन किया। पश्चात् भाई (अमरसेन) कहता है।।

बहुत दिनों के पश्चात् राजा का मन आनन्दित होकर चिन्तामणि तुल्य कुमार से मिलता है।।1।। राजा श्री अमरसेन अमृत तुल्य मीठी वाणी से अपने भाई से कहता है–तुम्हारे प्रसाद से (मैंने) सुखपूर्वक कंचनपुर का राज्य पाया (और) पृथ्वी पर प्रसिद्ध राजाओं का पूज्य हुआ।।।2-3।। हे धर्म वीर! वन में मुझे छोड़कर भोजन के कार्य से नगर में कहाँ गये थे?।।4।। मेरे पास शीघ्र लौट करके नहीं आये, तुम्हारे बिना मैं निराश होकर बैठ गया।।5।। (मैंने) नगर के साथ उपवन, पर्वत, गुहा, नदी-तीर और जिन मंदिर खुदवाये।।6।। कहीं नहीं पाया। हे धीर! कहीं क्या पर्वत पर या किसी गहरे समुद्र में रहे।।7।। भाई की बात सुनकर वइरसेन कहता है–सुनो, तुम्हारे नगर में छिप करके रहा हूँ, ऐसा जानो।।8।। अपना रहस्य किसी से प्रकट नहीं किया। वेश्या के साथ अपने रत्नों का उपभोग किया।।9।। उसके (वइरसेन के) वचन सुनकर हर्षित हुआ। हर्ष से संतोष अंगों में नहीं समाया।।10।। इसके पश्चात् राजा पूछता है–किस गुण (विधि अथवा कारण) से वेश्या को गधी बनाया है–सत्य बात कहो।।11।। कहा भी है–अति लोभ नहीं करना चाहिए। अति लोभ से आकृष्ट होकर लोभ का त्याग नहीं करने वाली वेश्या गधी होती है।।छ।। इसे चौराहे के बीच बाँध करके लक्ष्मी का भण्डार वह वइरसेन कहता है–हे राजन! स्त्री का प्रपंच सुनिये। अति लोभ से इसने मुझे ठगा है।।12-13।।

इसने शरद के मेघों का स्पर्श करने वाली चोटी के ऊपर से मेरा आम्र फल निकाल कर ले लिया, मुझे हाथ पकड़कर घर से निकाला तो भी मैंने इस मिथ्यावादिनी वृद्धा को क्षमा किया।।14-15।। आम्र फल के प्रभाव से सूर्योदय होने पर कुल्ला करके उगलने पर सूर्य के समान दीप्तिमान पाँच रत्न गिरते हैं।।16-17।।

घत्ता–हे राजन! उस समय व्यवसाय और सम्पदा से रहित क्या खाता? सुख में छेद करने वाली लोभिनी वेश्या मरे। मेरा भेद लेकर उसने अच्छा काम नहीं किया है।।5-1।।

(5-2)

अमरसेन से वइरसेन का वस्तु-प्राप्ति-वृत्त-कथन-वर्णन

हे प्रभु! अर्ध रात्रि के समय में जंगल में जाकर सुखपूर्वक (एक) देवालय में बैठ गया।।1।। उसी समय चोर तीन अनुपम वस्तुएँ अपने तेज से जो सूर्य से मिलती हैं (वे वस्तुएँ हैं) कथरी, लाठी और आकाश में गमनशील पावली लेकर वहाँ आये।।2-3।। इन वस्तुओं के कारण नगर चोर झगड़ते हैं। मैंने मधुर वाणी से चारों से पूछा।।4।। किस कारण से झगड़ते हो, मुझे बताओ, मैं तुम्हारे दुस्साध्य झगड़े को मिटाता हूँ।।5।। मैं रजनीचर तुम्हारी सहयाता करता हूँ, हे भाई! मुझे सुखपूर्वक रहस्य प्रकट करो।।6।। वे मेरे पास आकर मधुर वाणी से कहते हैं सुनिये।।7।। किसी योगी ने छः मास पर्यन्त साधना की। साधना से सिद्ध हुई सूर्य के समान तेजवान वह विद्या योगी को मन-इच्छित कार्य (करने वाली) तीन वस्तुएँ देकर अपने स्थान पर चली गई। वह मिथ्यात्व का पुजारी योगी सन्तुष्ट हुआ।।8-10।। युद्ध में शत्रु का मर्दन करने वाली लाठी युद्ध में अजेय है, पावली–आकाश में सूर्य के समान तेज गतिमान है।।11।। कथरी झड़ाने से सूर्य के समान दीप्तिमान सात सौ रत्न पृथ्वी पर गिरते हैं।।12।। हम छह माह योगी के पास अति दुःख धाम शमशान में सोये हैं।।13।। उसी स्थान पर कापालिक को मारकर मन इच्छित कार्य करने वाली तीनों वस्तुएँ

ले आये हैं।।14।। ये वस्तुएँ तीन हैं और हम (चोर) चार हैं। हे स्वच्छ हृदय! ये बँटवारे में नहीं आती हैं।15।। मैंने कहा–पवित्र वस्तुएँ मुझे दो। मैं सत्य कहता हूँ भली प्रकार आप लोगों में बाँट देता हूँ।।16।। मुझे वस्तुएँ दी गयीं। मैं पैरों में पावली पहिन करके आधे पल में चला गया और नगर आ गया।।17।। चोर अपना सिर पीटकर पश्चाताप करके बिलखते हुए वहाँ से चले गये।।18।।

घत्ता–तुम्हारे मिलन से वंचित रहा किन्तु अपनी कथरी के प्रसाद से निधि पाकर भूखा नहीं रहा। इसके पश्चात् व्यभिचारी जनों की स्त्री वेश्या के द्वारा देखा गया और मीठी वाणी से मैं घर में जाया गया।।5-2।।

(5-3)

वइरसेन का अमरसेन से वेश्या के गधी होने का वृत्त-वर्णन

इसके पश्चात् हे स्वामी! वेश्या ने मुझे आकाशगामी पावली से समुद्र के बीच मदनदेव की मेरे अर्थ बोली गई यात्रा के लिए कहा।।1-2।। उसके कहने से मैं (उसे) मदनदेव के मन्दिर ले गया। मैंने वन्दना नहीं की। मेरी पावली लेकर और मुझे छोड़ करके वह (वेश्या) घर आ गई।।3-4।। वहाँ मेरा हितैषी और सुखकारी पूर्वभव का सम्बन्धी (एक) विद्याधर आया।।5।। प्राणियों के सुखकारी उस विद्याधर से अपने बैरी का मैंने पूर्ण वृत्त कहा।।6।। मैं देव मन्दिर पर्वत को देखने तथा जाने को रोका गया।।7।। मुझे पन्द्रह दिन की अवधि देकर (विद्याधर) चला गया। मैं कर्म से प्रेरित होकर वहाँ गया।।8।। वहाँ छोटे वृक्ष का फूल सूँघा। हे प्रभु! मैं शीघ्र गधा हो गया।।9।। वहाँ पंद्रह दिन पूर्ण होने पर विद्याधर आया। उसके द्वारा मैं गधे के रूप में देखा गया।।10।। वह मुझे दूसरे वृक्ष का फूल सुँघाता है। मेरा जो रूप था वह मैं पा जाता हूँ।।11।। मैंने विद्याधर के पास फूलों का रहस्य ज्ञात किया। इसके पश्चात् मैंने कहा–मुझे मेरे निवास पर

भेजो।।12।। मुझे पाँच दिन (और) रहने को कहकर विद्याधर चला गया। कर्म-वश मैं देवालय में रहा।।13।। उसी समय मैंने मन में विचार किया और दोनों वृक्षों के फूल तत्काल ले लिये।।14।। विद्याधर से छिपाकर गाँठ में बाँध करके मैं सुन्दर और सुगन्धित (वे फूल) यहाँ ले आया।।15।। विद्याधर के द्वारा मैं यहाँ छोड़ दिया गया।। इन्द्र के समान स्वेच्छानुसार (मैंने) नगर में भ्रमण किया।।16।। उस मायाविनी (वेश्या) के द्वारा मैं नगर में देखा गया। वेश्या ने अंगों में पट्टियाँ बाँध लीं।।17।। हे प्रभु! (वह) बैरिन विद्याधर को कहकर मुझे अपने घर ले गई।।18।। (वहाँ कहने लगी) शुद्ध मति से देवता की आराधना करके मुझे और अनुपम वस्तु लाये हो कहो।।19।। अपने मन से सुखपूर्वक हाथ में लेकर जो वृद्धा सूँघती है वह शीघ्र नव यौवन हो जाती है।।20।। स्वामी मुझे दुःखहारी औषधि देकर और इस स्थान पर छोड़कर गये हैं।।21।। मेरे कहे वचन सुनकर वह क्रूर वृद्धा दासी मन में अति हर्षित हुई।।22।।

घत्ता–(वेश्या ने कहा–)दया करो और मुझे शीघ्र श्रेष्ठ तथा सुन्दर औषधि दो। मनुष्य देव और नागेन्द्र के समान वर्ण-रूप-सौंदर्य तथा रति की देह के समान मेरा शरीर करो।।5-3।।

(5-4)

वेश्या को निज रूप और वइरसेन को गत-वस्तु-लाभ तथा राज-द्वार में हुआ हर्षोल्लास-वर्णन

मैंने (वइरसेन ने) विचारा–मुझे अवसर मिल गया है। जो अवसर पाकर कर्त्तव्य नहीं करता है, वह श्रेष्ठ मनुष्य जन्म को व्यर्थ खोता है। लोग (उसे) निश्चय से हीन और निकम्मा कहते हैं।।1-2।। (मैंने) फूल सुँघाकर (वेश्या को) गधी के रूप में किया (और) यम के वेष में उसके ऊपर बैठा।।3।। वेश्या के कुटुम्बियों ने मुझे मारने को सेना सहित कोतवाल को बुलाया।।4।। यह सुनकर मेरे पूज्य हे भाई! मेरे निमित्त से आप आये (और) मिले।।5।। (मैंने) तुम्हें

वेश्या के अपने बैर को कहा/बताया है। हे राजन! जो जानें हमारा करो।।6।। (राजा ने कहा) मेरे कहने से वेश्या को अभी मुक्त करो (और) जो (उसने तुम्हारी) वस्तुएँ ली हैं वे सुखपूर्वक ले लो।।7।। वइरसेन ने राजा के वचन स्वीकार किये। गुणों की शृंखला वइरसेन ने शत्रु (वेश्या) को नहीं मारा।।8।। (वह) दूसरे वृक्ष का फूल उस दुष्ट वेश्या को सुँघाता है। वह जिस रूप में पहले लोगों के द्वारा देखी गई थी (उस रूप में परिवर्तितत) हो गई।।9।। कुमार ने आम्रफल और पावली दोनों वस्तुएँ माँगी।।10।। उसने वे वस्तुएँ भयभीत होकर कुमार के हाथ में दे दी। राजा और कुमार हर्षित हुए।।11।। जय-जयकार हुआ, बहुत प्रकार के बाजे बजाये गये। मन-आकर्षित करने वाली विलासिनी स्त्रियाँ नृत्य करती हैं।।12।। राजा दान देते जय-जय ध्वनि के बीच भाई के साथ चला।।13।। वहाँ भाट विरुदावलियाँ कहते हैं, वणिक् अपनी ओर से सुंदर वस्तुएँ भेंट में देते हैं।।14।। क्रमानुसार चंदोवे बाँधे गए, राज-द्वार पर मंगलगीत गाए गए।।15।। स्त्रियाँ बार-बार आशीष देती हैं कि कुमार के साथ राजा की जय हो, आनन्दित रहें और वृद्धि हो।।16।। महलों के अग्रभाग पर पाँच वर्ण की ध्वजाएँ स्थापित की गयीं। सुंदर मणियों से निर्मित तोरण बाँधे गये।।17।।

घत्ता–कुमार वइरसेन को युवराज पद दिया गया। इस अवसर पर राजा के कंचनपुर नगर में वाद्य-ध्वनियाँ की गयीं। स्त्रियों ने मंगल गीत गाये और नृत्य किया।।5-4।।

(5-5)

वइरसेन की दिग्विजय, दोनों भाईयों की माता-पिता के प्रति कृतज्ञता तथा कर्म-सिद्धान्त-वर्णन

दोनों भाई बहुत स्नेह से रहते हैं और अनुराग से पूर्वक सुख से अपनी प्रजा का पालन करते हैं।।1।। उनके तेज से राज्य में चोर और व्यभिचारी नहीं (रहे), बैरियों का भय नहीं (था), लोग सुख से

रहते हैं।।2।। कुमार-वइरसेन ने पावली और लाठी लेकर दुर्जय सभी विद्याधरों को वश में करके एक साथ बांधकर और राजा के पैरों में डाल राजा की आज्ञा मनवाकर अपने नगर आया।।3-4।। राजा के साथ कुमार ने हाथ में दण्ड लिया और रणभूमि में मनुष्य क्षेत्र जीता।।5।। राजा का सम्पूर्ण पृथिवी पर राज्य हो गया। दोनों भाई धर्म, अर्थ और काम में संलग्न हो गये।।6।। मतिमान् वे दोनों भाई जिन-देव, जिन-श्रुत और जिन-गुरु की त्रिकाल पूजा करते हैं और वहाँ जिनागम सुनते हैं।।7।। आहार-दान देकर चतुर्विध संघ का पोषण करते हैं और वे गुणनिधि शुभ ध्यान में रहते हैं।।8।। शुभमति के पथिक वे सुखपूर्वक राज्य करते हुए अपनी स्त्री के रति सुख में रमण करते हैं।।9।। नगर के तेजस्वी बड़े लोगों के द्वारा अपने माता-पिता को बुलवाकर बहुत उत्सव के साथ उन्हें वे घर ले जाते हैं और उन्हें देव तुल्य वस्त्र पहनाये जाते हैं।।10-11।। तुरही, सरू, मदन और भेरी वाद्य बजाये गये। भली प्रकार स्नान कराके वे हाथ जोड़कर चरणों में प्रणाम करते हैं। तुरही, मृदंग और भेरी वाद्य बजाये जाते हैं।।12।। वे अपने ताऊ को सिंहासन पर बैठाते हैं और निरन्तर विनम्र वचन बोलते हैं।।13।। राजन! आपके प्रसाद से ही हमें कंचनपुर का राज्य मिला है।।14।। निज बल से समस्त शासक वश में किये हैं, अनेक विधियों से राज-कन्यायें विवाही हैं।15।। आप लोगों ने भला किया है जो कि हमें अपने घर से निकाला, हम सुखपूर्वक हैं।।16।। (अपने) सौतेली माता के वचन सुनकर हमारे मन के मनोरथों को पूर्ण किया है।।17।। निश्चय से कृत, शुभ और अशुभ कर्म उद्धमन करते हैं। शुभाशुभ फल देते हैं। कृत सुख और दुख देने वाले कर्म अन्यथा नहीं होते हैं।।18।। भाग्य ने (जो) माथे पर लिख दिया है, (वह) अचल है। आप खेद न करो। जो बोया था वह पाया है।।19।। इस प्रकार मन की इच्छानुसार राज्य करो। राजाओं सहित हम आपके चरणों की सेवा करते हैं।।20।। पुत्र के वचन सुनकर राजा (वइरसेन का ताऊ) युक्त वचन कहता है-हे मित्र! जो पुण्य सहाई होता है तो

ज्ञान नेत्र वाले जिनेश्वर कहते हैं कि निश्चय से (वह) निधियों के साथ राज्य भोगता है।।21-22।।

घत्ता–दुर्जन, पापी, दूसरों को सताने वाला, (जो) दुर्बुद्धि सज्जनों में दोष देखता है, अपने (दोष) नहीं देखता, सज्जनों की गोपनीयता भंग करता है वह दुखदायी नरकगति का बन्धन करता है।।5-5।।

(5-6)

अमरसेन-वइरसेन की कोतवाल के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन, अकृत्रिम चैत्यालय-वन्दना एवं पूर्वभव-स्मरण

कुमारों ने अनेक प्रकार के शुभ वचनों से बहु विनय पूर्वक सौतेली माता से क्षमा कराई।।1।। इसके पश्चात् राजा ने कोतवाल को बुलाया जिसने मरणकाल में कुमारों को छोड़ दिया था।।2।। (उसके) गुणों को स्वीकार करके प्रशंसा करते हुए उन्हें सभी नये दिव्य वस्त्र देकर उपदेश दिया।।3।। नगर के बाहर जहाँ उस वर्ण के लोग रहते थे वहाँ उन्हें शरण देते हुए रहने को भूमि दी।।4।। इसके पश्चात् कुमार धर्म, अर्थ और काम को भोगते हुए सुखपूर्वक रमण करता है।।5।। आकाशगामी पावली के प्रसाद से दोनों भाई कृत्रिम और अकृत्रिम जिन-प्रतिमाओं की वन्दना करते हैं।।6।। अपनी सेना सहित वन-क्रीड़ा और सरोवर तथा वापियों में जल-क्रीड़ा करते हैं।।7।। किसी दूसरे दिन वे दोनों भाई सुखपूर्वक घर के झरोखे पर बैठकर देखते हैं।।8।। उन्हें अपनी चर्या के निमित्त आकाश से आते हुए रत्नत्रय से विशुद्ध दो मुनि दिखाई दिये।।9।। वे नगर के एक श्रावक के घर उतरते हैं। उसने पड़गाहन करके वहीं (उन्हें) आहार दिया।।10।। उन्हें अक्षय दान देकर (दोनों सहोदर) चले गये और सुरेन्द, नरेन्द्र तथा नागेन्द्र जिन्हें नमस्कार करते हैं वे मुनि भी चले गए।।11।। उपवन में रथ से उतरकर राजा और नगर-वासियों ने स्तुतियाँ रचकर उनकी वन्दना की।।12।। इसके पश्चात् कुमार को पूर्वभव का स्मरण हुआ कि इन मुनियों के समान ही निश्चय से मुनि

व्यापारी के घर आये हैं। हम भाइयों ने (उन्हें) अपना भोजन कराया था।।13-14।। धण्णंकर और पुण्णंकर कर्मचारियों ने अशुभ को दूर करने वाले मुनियों की वन्दना की है।।15।। पूर्वभव में इन्हीं ने हमें दिव्य-ध्वनि से कर्मनाश की युक्ति की थी।।16।। दोनों भाई परिवार सहित वहाँ गये और दोनों ने मुनियों की चरण-पूजा करके वन्दना की।।17।।

घत्ता—काम-विनाशक, व्रत-तप और संयम से उज्ज्वल अवस्था वाले, निर्ग्रन्थ, दिगम्बर, ऋद्धियों से आकाशगामी, तप-तेज से सूर्य विजेता मुनियों के पास (राजा) बैठ जाता है।।5-6।।

(5-7)

राजा को पंच-पाप-त्यागमय चारण-मुनि कृत धर्मोपदेश

राजा ने बार-बार नमस्कार करके (कहा)—हे मुनिश्वर! सुखकारी धर्म कहो/समझाओ।।1।। मुनि कहते हैं—सुनो! लोक में सार स्वरूप दयालु जैनधर्म है।।2।। भव्य जनों को गृहस्थ धर्म इष्ट है, जो श्रावक के व्रत भली प्रकार पालता है (वह) शिव-सुख को देने वाली शुभगति में गमन करने वाला होता है। स्थावर और त्रस के भेद से (जीव) बहुकायिक है।।3-4।। इन पर मन, वचन और कायपूर्वक बच्चों के समान हृदय से दया रखना धर्म है।।5।। प्रधान सत्य धर्म है। चारों प्रकार का दान शुभ गुणों का स्थान है।।6।। मुनियों को तप और श्रावकों को व्रत-शुभगति के सैकड़ों कारणों में अकेला पहला कारण है।।7।। जो सूक्ष्म और स्थूल जीव बताये गये हैं, उनकी विभिन्न जातियाँ कही गई हैं।।8।। जो उनके प्राणों का विनाश करता है वह नियम से नरकगति पाता है।।9।। जो रक्षा करता है वह सब प्रकार से सुखकारी रुचि के अनुसार श्रेष्ठ अनेक सिद्धियाँ पाता है।।10।। जो जन सत्य वचन अपने मन से आचरते हैं वे शाश्वत पद पाते हैं।।11।। इसी प्रकार जो झूठ बोलता है वह मूक होता है और दुर्गति में फंसता

है।।12।। झूठ बोलकर वह आगामी भव बिगाड़ता है, वह प्रतीति का पात्र नहीं होता और न शुभगति पाता है।।13।। पराये धन को देखकर (मनुष्य) गड्ढे में गिरा है (अत:) लेन देन में पर को मत ठगो।।14।। जो बिना दिया पराया धन प्राप्त करता है, वह चोर होकर अपनी कुशलता को जलाता है।।15।। (जो) पराये धन को धूलि के समान मानता है वह नियम से ऊपर (ऊर्ध्वलोक में) स्थित होता है।।16।। चोरों की संगति नहीं करें, बाधाकारी झूठ को भी त्यागें।।17।।

घत्ता–परस्त्री-रमण करने वाला दुर्गतिगामी और सुगति का निवारक तथा अपयश का घर होता है। प्रबल योद्धा रावण पर-स्त्री को मन में धारण करके नरक को प्राप्त हुआ यह लोगों में प्रकट है।।5-7।।

(5-8)

परस्त्री-त्याग एवं लोभ-परिहार तथा गुणव्रत सम्बन्धी धर्मोपदेश

परस्त्री रमण से दुर्गति होती है और परस्त्री रमण त्याग जल के समान सुखकर होता है।।1।। हे राजन! जो परस्त्री से सहवास से आनन्द मानते हैं। (उन्हें) तिनके के समान मानें।।2।। परस्त्री-सहवास त्यागो, सदाचार का पालन करके सज्जन नियम से शुभगति में जाते हैं।।3।। मन से लोभ का अतिक्रमण न करें। लोभ से धर्माचरण नहीं दें।।4।। लोभ में आसक्त पुरुष किसी को नहीं मानते। गमनागमन का कुछ भी विचार नहीं करते।।5।। सैकड़ों दु:ख देने वाले नरक तथा अन्य अनेक अनर्थकारी झगड़ों का कारण जानकर तृष्णा-लोभ का परित्याग करके निमय ग्रहण करें और फैलते हुए मन का संकोच करके धारण करें।।6-7।। दिशाओं और विदिशाओं में गमन करने की संख्या/मर्यादा-निश्चय करें और वर्षा ऋतु में गमनागमन छोड़ें।।8।। कठोर स्वभावी, अनार्य और भील जहाँ निवास करते हैं, जहाँ जैनधर्म नहीं है, जहाँ साधर्मी नहीं हैं और भाई भी नहीं हैं वहाँ निवास न करें

और शुभकर्म करें।।9-10।।

घत्ता—जो पाप में रत हैं, पापी हैं, दुष्ट हैं ऐसे लोगों और दुष्ट मन वाले तिर्यञ्चों को न पकड़ें, न पालन-पोषण करें, न बोलें और न देखें। सज्जन (इनमें) मध्यस्थ रहें।।5-8।।

(5-9)

शिक्षाव्रत-उपदेश एवं अमरसेन का पूर्वभव-वृत्तान्त

सभी जीवों के मैत्रीभाव धारण करके एकचित्त से सामायिक करें।।1।। अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों में प्रोषधोपवास करके फैलते हुए अपने मन का संकोच करें।।2।। श्रावक सुख का निधान-भोग और उपभोग की वस्तुओं के परिमाण का नियत करें।।3।। जो अतिथियों और मुनियों को अहार कराते हैं वे मनुष्य भोगभूमि के सुख पाते हैं।।4।। रात्रि का भोजन बहुत पापों की खदान है। रात्रि में खाने-पीने में कुछ भी दिखाई नहीं देता।।5।। अनछना पानी पीने से जीव बहुत रोगों से पीड़ित होता है, कीड़े पड़ जाते हैं।।6।। इसे सागारधर्म जानों। जो इसे सस्नेह धारण करता है (वह) मुक्ति पाता है।।7।। सभी ने इसे ग्रहण करके साधु की वन्दना की तथा मन में अपूर्व लाभ माना।।8।। इसके पश्चात् कुमार मुनि के चरणों में नमस्कार करके स्थिर होकर अमृतोपम वाणी से कहता है सुनो।।9।। हे स्वामी! हमारा पूर्वभव कहकर हमारे हृदय का सन्देह दूर करो।।10।। ऐसा सुनकर संशय दूर करने वाले (वे मुनि) कहते हैं—हे राजन! सुनो! दुखहारी तुम्हारा (पूर्वभव) कहता हूँ।।11।। इस जम्बूद्वीप में लवण-समुद्र से सुशोभित श्रेष्ठ भरतक्षेत्र है।।12।। वहाँ धन-धान्य और स्वर्ण-सम्पदा के घर मनोहर नगर है।।13।। उनमें लोक में प्रसिद्ध ऋषभपुर नाम का श्रेष्ठ और सुन्दर नगर है।।14।।

घत्ता—उस प्रधान नगर का स्वभाव से विनयवान अरिमर्दन नाम का राजा था। देवांगना के समान उस विशुद्ध नृपति की देवलदे नाम की पट्टरानी थी।।5-9।।

(5-10)
अमरसेन-वइरसेन का पूर्वभव-वृत्त

पृथ्वी पर प्रधान वह राजा सुविध मंत्री से मंत्रणा (सलाह) करके पुरजनों की सेवा करता है।।1।। उस नगर में अभयंकर नामक ऋद्धियों से सम्पन्न (एक) व्यापारी रहता है।।2।। व्यवहार में कुशल उसकी स्त्री मिथ्यात्व का त्याग करके जैनधर्म में आसक्त थी।।3।। उसके घर धण्णंकर और पुण्णंकर (नाम के) दो कर्मचारी भाई रहते हैं।।4।। बड़ा भाई वहाँ घर का काम करता है और छोटा भाई उपवन में धन की रक्षा करता है।।5।। सेठ अभयंकर अर्हन्त का भक्त था। वह सुखपूर्वक घर में विचार करते हुए रहता है।।6।। अहो! संसार में पुण्य का अन्तर होता है पुण्य से देव, मनुष्य, फणीन्द्र और मोक्ष पद (भी) प्राप्त होता है।।7।। हे भाई! पाप के फल का अन्तर देखो भाई मरकर घर के दुखी कर्मचारी हुए।।8।। वहाँ सेठ के घर दोनों भाई विचरते हैं कि हम न्यायनीति से काम में रहें/काम करें।।9।। संसारी जीव भवसागर में पड़ा है, जिनधर्म (धारण) किये बिना (वह) बाहर नहीं निकलता है।।10।। ऐसा विचार करके जैनधर्म के भक्त वे दोनों भाई शुभ ध्यान में चित्त से लीन हो जाते हैं।।11।। ऐसा प्राणी संसार-सागर में नहीं डूबने वाला कहा गया है। वे दोनों भाई व्यापारी के पास क्रीड़ा करते हैं।।12।। किसी दूसरे दिन सेठ वहाँ जाता है, दोनों भाईयों को जैनधर्म में देखता है।।13।। वह सुखपूर्वक इनका उपकार करता है, (उन्हें) किये अशुभ कर्मों की रति से निकालता है।14।। दोनों भाईयों को वहाँ स्नान कराके शुभ्रवस्त्र पहिनाकर-।।15।।

घत्ता–उन्हें जिन-मन्दिर के उस स्थान पर ले गया जो सुशोभित था। जहाँ चातुर्मास में मुनि विराजमान रहते हैं। इसके पश्चात् तीनों ने जिन-मन्दिर में आष्टाह्निक पर्व में उपवास किया।।5-10।।

(5-11)

धण्णंकर-पुण्णंकर का पर पूजा द्रव्य न लेने पर मुनि कृत सम्बोधन

सेठ (अभयंकर) देव-शास्त्र और गुरु की पूजा के हेतु सुन्दर स्वच्छ पुष्पमाला लेकर आधे पुष्प कर्मचारी दोनों भाइयों को देता है किन्तु वे पर-द्रव्य ग्रहण नहीं करते।।1-2।। सेठ पूछता है—क्यों नहीं लेते? मेरा पौद्गलिक हृदय आश्चर्यचकित है। यह बात देह में डाभ के समान चुभ रही है।।3।। वे भाई कहते हैं—यदि हम फूल लेते हैं तो उससे सुखपूर्वक उत्पन्न पुण्य हमें प्राप्त नहीं होता है।।4।। हे सेठ! निश्चय से हम (पर द्रव्य) ग्रहण नहीं करते—ऐसा वे मीठी वाणी से कहते हैं।।5।। ऐसा सुनकर सेठ हर्षित चित्त से (उन्हें) श्रेष्ठ और यति के पास ले जाकर जिनेन्द्र और जैनधर्म पर चित्त लगाकर तथा गुरु के चरणों में पुनः-पुनः प्रणाम करके (कहता है)।।6-7।। हे मुनिराज! सुनिये! स्वच्छ-हृदय ये दोनों भाई—हम इन्हें पूजा की द्रव्य देते हैं। (फिर भी) जिनेन्द्र की पूजा नहीं करते।।8।। हे भव्य मुनिराज! गर्व विहीन दोनों भाइयों से इसका कारण पूछिए।।9।। ऐसा सुनकर मुनि अमृतोपम-वाणी से कहते हैं—हे कर्मचारी भाइयों! नृपति, सुरपति और फणीपति त्रैलोक्य वन्द्य जिनेन्द्र के चरणों की पूजा करते हैं, तुम क्यों नहीं करते?।।10-11।। वह श्रावक के मन को परम प्रिय है। सुरेन्द्र, नरेन्द्र, फणीन्द सभी को मोक्ष गमन के लिए सा-स्वरूप है।।12।। ऐसा सुनकर धण्णंकर और पुण्णंकर ने अन्य सुन्दर वचन कहे।।13।। हम अपनी द्रव्य से फूल लेकर जिनेन्द्र स्वामी की पूजा और स्तुति करते हैं।।14।। मुनिराज कहते हैं—हे भव्य (भाईयो) यदि तुम्हारे पास कुछ द्रव्य है तो कहो।।15।।

घत्ता—एक कर्मचारी ने मीठे स्वर से कहा—हे यति! मेरे पास पाँच कौड़ियाँ हैं। हे बुद्धिवन्त यति सुनिये फूल अमूल्य हैं। कौड़ियों के मूल्य को छोड़ो, उससे क्या प्राप्त हो (सकता) है।।5-11।।

(5-12)
पूर्वभव में किये अमरसेन-वइरसेन के पात्र-दान-का माहात्म्य वर्णन

ऐसा सुनकर बड़ा भाई कहता है–मैं क्या करूँ निधि/द्रव्य-हीन उत्पन्न हुआ हूँ।।1।। हे ऋषि! मुझ पापी के एक कौड़ी भी नहीं है। तीन लोक के स्वामी जिनेन्द्र की पूजा कैसे करूँ?।।2।। ऐसा कहकर मुनि के पास (उसने) गहरी सांस ली और चारों प्रकार के आहार के नियम (त्याग) की घोषणा की।।3।। मेघों का चुम्बन करने वाले अपने शिखर/कलश से युक्त जिनालय में दिन-रात रहकर दूसरे दिन वहीं स्नान करके उसके द्वारा जिनेन्द्र, जिन-श्रुत और जिन-गुरु की पूजा की गई।।4-5।। पाँचों कौड़ियों से फूल लेकर जिनेन्द्र के चरणों में चढ़ाकर स्तुति की गई।।6।। इसके पश्चात् सेठ के साथ घर गये। उस समय सेठानी ने अति विनयपूर्वक मीठी बोली से कहकर कर्मचारियों को छहों रसों से (निर्मित) भोजन दिया/परोसा।।7-8।। सम्पूर्ण थाली लेकर और भली प्रकार बैठकर दोनों भाई हृदय में विचारते हैं–पुण्योदय से यदि कोई यहाँ श्रेष्ठ मुनि पात्र आता है (तो) उनके लिए हमारा भोजन हो (हम देवें)।।9-10।। जिस समय वे दोनों भाई ऐसी भावना भाते हैं उसी समय चारण ऋद्धिधारी दो मुनि आते हैं।।11।। दोनों भाई मुनियों को देखकर विनत सिर से उन्हें पड़गाह करके (कहते हैं) हे मुनि! यहाँ शुद्ध भोजन है, ठहरिये-ठहरिये! (इस प्रकार पड़गाह करके) दोनों भाई अपना आहार देते हैं। पारणा करके अक्षय दान देने वाले चारण मुनि आकाशमार्ग से चले गये। कर्मचारियों से सेठ सन्तुष्ट हुआ।।12-14।। (वह कहता है) हे भव्य! यहाँ चारण मुनियों को पड़गाह करके आप लोगों ने पुण्यार्जन किया है, तुम लोग सुगति-मोक्ष के पथिक हो।।15।। अब भोजन करो यहाँ और (भी) भोजन सामग्री है। (वे भाई) कहते हैं–बहुत तृप्ति प्राप्त हुई है (हम) भोजन नहीं करते।।16।। हम चारों प्रकार के आहार का

त्याग करते हैं। हे सेठ! दूसरे दिन शीघ्र भोजन करेंगे।।17।। दान के प्रभाव से तुम दोनों मरकर सनत्कुमार स्वर्ग में महान् पद पाकर और सात सागर समय भोग भोगकर राजा के घर राजपुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हो।।18-19।।

घत्ता–हे यतीश्वर! त्रिभुवन के स्वामी! कहिएगा कि हमारी सौतेली माता ने किस कारण से हमें वहाँ दोष लगाया? और हमारा तिरस्कार हुआ।।5-12।।

(5-13)

अमरसेन-वइरसेन द्वारा पूर्वभव में की गई जिन-पूजा का फल, उनके शिव-पद पाने की भविष्यवाणी एवं व्रत-ग्रहण-वार्ता-वर्णन

हे भाई! निश्चय से कहता हूँ–अब शीघ्र कर्मों का उपाय करो।।1।। अपने पुत्र को राज्य प्राप्त कराने के निमित्त सौतेली माता को तुम शल्य स्वरूप थे। (इसलिए) उसने दोषारोपण किया, कपट किया और राजा से तुमने किया है कहा।।2-3।। राजा ने (तुम्हें) मारने को चाण्डाल से कहा और चाण्डाल ने दया-भाव से विदेश दिया।।4।। वहाँ शुभ कर्मों से तुम्हें राज्य मिला। (यह) झूठ नहीं है और न निश्चय से अन्यथा बात है।।5।। पूर्वभव में किये कर्म छूटते नहीं हैं। जीव के पास पड़े रहते हैं।।6।। किये शुभ और अशुभ कर्म (फल) भोगो।।7।। ऐसा जानकर सहज रूप से शत्रुओं पर मैत्री-भाव और क्षमा भाव कीजिए।।8।। जो पाँच कौड़ियों से फूल लेकर जिनेन्द्र के चरणों में सिर झुकाकर चढ़ाये थे। उस पुण्य के प्रभाव से सुखपूर्वक पाँच सौ रत्न सूर्योदय में भूमि पर देने वाला आम्रफल, सात सौ रत्न झड़ाने वाली कथरी और आकाशगामिनी पावली तथा भूमि-गोचरी राजाओं, विद्याधरों और दुष्ट राजाओं को जो वश में करती है, (जिससे) अतुल बलशाली जन आश्चर्य चकित होकर एकाग्रचित्त से प्रतिदिन (तुम्हारे) चरणों की सेवा करते हैं–वह लाठी

(प्राप्त हुई है)।।9-13।। इसके पश्चात् मुनि कहते हैं–हे वत्स! मन में स्थित (इच्छित) सुरेन्द्र, नरेन्द्र का पद प्राप्त करोगे।।14।। इसके पश्चात् तुम तप करके मोक्ष जाओगे।।15।। दोनों भाई अपना पूर्वभव सुनकर इतने आनन्दित हुए कि वह आनन्द हृदय में नहीं समा रहा था।16।। अन्य नर-नारियों ने धर्मोपदेश सुनकर बिना किसी श्रम/खेद के उस पर हृदय से श्रद्धान किया।।17।। किसी ने अणुव्रत लिए, किसी ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये।।18।। कोई त्रिकाल देव जिनेन्द्र की पूजा (के नियम को) कोई सोलहकारण व्रत को, कोई दशलक्षण व्रत लेते हैं, तथा कोई देवों द्वारा पूज्य व्रतियों से केलि करते हैं।।19-20।। किन्हीं ने भली प्रकार पंचमी का व्रत लिया और किसी ने इष्ट (मास के अष्टमी-चतुर्दशी) चारों पर्वों के व्रत लिये हैं।।21।।

घत्ता–गुणों के सागर वे दोनों भाई और उन राजकुमारों के प्रमुख जन मुनि को नमस्कार करके धर्म और अणुव्रतों से सहित प्रसन्न हृदय से अपने नगर गए।।5-13।।

(5-14)

अमरसेन-वइरसेन कृत धार्मिक-कार्य-वर्णन

इस प्रकार दान का फल सुनकर स्वच्छ हृदय दोनों भाई अशुभ-हारी पात्रों को (दान) देते हैं।।1।। राजा अमरसेन और वइरसेन स्वच्छ/शुद्ध दोनों भाई जिनेन्द्र के प्रति दान में आगे (रहते हैं)।।2।। वे वर्ष भर पुर, पट्टन, द्वीप नगर और ग्रामों में दान कराते हैं।।3।। वहाँ वे प्रतिदिन दु:खी पथिकों को छहों रस-सहित भोजन दिलाते हैं।।4।। स्थान-स्थान पर प्राणियों का पालन करते हैं। पथिकों को पोसरे (प्याऊ) देते हैं/खुलवाते हैं।।5।। धर्म के लिए धर्म जानने/समझने के लिए और जिनेन्द्र की पूजा के लिए जिन-विहार/मन्दिर तथा जिन-स्नपन के लिए बहुत कुछ बावड़ी तथा कमलों से आच्छादित सरोवर बनवाये।।6-7।।

कहा भी है–पुत्र शोक के समान शोक, इच्छा-हनन/निरोध के

समान तप, दया के समान धर्म और दान के समान (अन्य) निधि नहीं है।।1।।

वे पात्रों का चारों प्रकार के दान से और दीन-हीन पुरुषों का दया-दान से पोषण करते हैं।।8।। जहाँ-जहाँ तीर्थंकरों ने जन्म लिया है, केवलज्ञान और मोक्ष पाया है। अन्य वे स्थान जहाँ सिद्धों ने जन्म लिया है वहाँ-वहाँ इन दोनों भाइयों ने चैत्यालय बनवाये।।9-10।। स्थान-स्थान पर जिन प्रतिमाएँ बनवायीं और प्रतिष्ठा करा करके उन्हें चैत्यालय में स्थापित किया।।11।। अपना द्रव्य व्यय करके जिनेन्द्र स्वामी के मन्दिर में विविध महोत्सव किये।।12।। जहाँ-जहाँ चैत्यालय बनवाये वहाँ-वहाँ जिनयज्ञ शालाओं की पूर्ति की/जिन यज्ञशालाएँ बनवायी।।13।। जिन स्वामी के सभी तीर्थों की वन्दना की और कृत्रिम, अकृत्रिम जिन-स्वामी की पूजा की।।14।। पर्व की तिथियों में प्रोषधोपवास करते हुए चतुर्विध आहार से संन्यास लेते हैं।।15।। कार्योत्सर्ग से ध्यान में रहते हैं। सूर्योदय होने पर स्नान करके जिनेन्द्र की पूजा करते हैं।।16।। सातवीं घड़ी में मुनि को (आहार) देकर भोजन की पूजा करते हैं और सज्जनों के मन तथा नेत्रों को आनन्दित करते हैं।।17।। वे दयालु धर्मध्यान में रहते हैं। सप्त-व्यसनों से नित्य दूर चलते हैं।।18।। अपना यश रूपी नगाड़ा तीनों लोक में बजवाया। वे पूर्वभव में किये के समान भव्यजनों को सब करते हैं/सुविधायें देते हैं।।19।। मन, वचन और काय तीनों की शुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र की पूजा और व्रतीसंघ को दान देते हैं।।20।। अन्य जिन-मन्दिरों में तीनों प्रकार की शुद्धिपूर्वक मणि-मय जिन-प्रतिमायें स्थापित कराते हैं।।21।।

घत्ता—जिनेन्द्र चरणों के भक्त कुमार सुखपूर्वक राज्य करते हुए अपने परिजनों को अनुरंजित करते हैं। किसी दूसरे दिन कुमार राजा के साथ बैठ करके त्रेसठ शलाका पुरुषों की चरित-कथा सुनते हैं।।5-14।।

(5-15)

मुनि देवसेन का समवशरण-आगमन, अमरसेन, वइरसेन की मुनि-वन्दना एवं श्रावक-धर्म-श्रमण

उसी समय वनपाल डलिया (टोकरी) में फल-फूल भर कर लाया।।1।। नृप के आगे डलिया राजा के प्रणाम करके हँसते हुए (वह वनपाल) कहता है।।2।। हे नृप! मेरी बात सुनो! आपके वन में देव, मनुष्य, नरेन्द्र और नागेन्द्र से पूजित यतिवर स्वामी देवसेन का हितकारी संघ आया है।।3-4।। उन वनपाल के वचन सुनकर राजा ने उठकर उसे वस्त्राभूषण देकर संतुष्ट किया।।5।। वहाँ आनन्द भेरी बजवाई। उसकी ध्वनि से नगरवासी आ गये।।6।। राजा एकत्रित हुए लोगों और परिजनों के साथ मुनिवर की यात्रा के लिए चला।।7।। सहर्ष हाथी से वह नन्दन वन गया और हाथी से उतर कर संतुष्ट होते हुए राजा ने मुनि की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर जय-जय शब्द उच्चारण करते हुए प्रणाम किया।।8-9।। इसके पश्चात् श्रमण-संघ की वन्दना की तथा मुनि देवसेन की बार-बार वन्दना की।।10।। (राजा अमरसेन ने निवेदन किया) हे परमेश्वर (मुनिराज) जो जिनेन्द्र (भगवान) ने भव्य जनों के लिए कहा है वह सुखकारी श्रावक-धर्म कहिएगा।।11।। राजा के निवेदन सुनकर देव, मनुष्य और विद्याधरों से पूजित मुनिनाथ ने कहा।।12।। हे राजन! जीवों की दया से सहित ही धर्म है अतः हे दयालु! पहले उसे पालना चाहिए।।13।। झूठ कभी नहीं बोलें। झूठ बोलने वालों का तिरस्कार करें।।14।। पराया-धन पाकर मत लाओ। लोग उसे चोर कहकर मारें।।15।। परस्त्री-सहवास कभी न करें। उसका सिर मुड़वा करके उसे गधे पर बैठाओ।।16।। काला मुँह करके नगर में घुमावें और नाक काटकर नगर से निकाल दें।।17।।

घत्ता—हे राजन! ऐसा करने से लोक के भय से जीव प्राण नाशकर देता है और कुध्यान से मरकर नरकगति पाता है। वहाँ (वह) जिन दुःखों को रोका नहीं जा सकता वे पाँच प्रकार के दुःख

(पाता है) (उस) कुगति में छेदा जाता है और तिल के समान देह खण्ड-खण्ड की जाती है।।5-15।।

(5-16)
अमरसेन-वइरसेन के लिए मुनि देवसेन कृत धर्मोपदेश

परिग्रह-दुर्गति के कारणों को (उत्पन्न) करता है।।1।। परिग्रह का मोही कैसे भी सचेत नहीं होता है। वह विविध प्रकार के व्यापार करता है और धन को जोड़ता है।।2।। मूल में प्रथम भूल उसकी अज्ञानता है। छिपकली को मुंह में लेकर जैसे सर्प पछताता है। वह न खा पाता है और न उसे छोड़ पाता है ऐसे ही परिग्रही द्रव्य को न (स्वयं) भोग पाता है और न पात्र को दे पाता है।।3-4।। सम्पत्ति का लोभी-पापी (मनुष्य) मरकर हृदय के लिए अति कठिन महादु:खकारी नरकगति में जाता है।।5।। जो पाँच अणुव्रतों को पालता है वह शिव-वनिता का मुखावलोकन करता है।।6।। भव्य जन-शुभ गति (हेतु), चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रतों का पालन करें।।7।। मुनि ने सानन्द सम्पूर्ण जिनागम और त्रेसठ-शलाका पुरुषों का चरित्र कहा।।8।। यति ने (जीवों की) आयु और शारीरिक अवगाहना तथा तीनों लोक का प्रमाण खोलकर समझाया।।9।। देव, मनुष्य और नारकियों के भेद तथा जिनेन्द्र कथित सभी प्रकट करके कहा।।10।। हे राजाओं के राजा! ऐसा करें जिससे व्रत और तपश्चरण के भाव रहें।।11।। चतुर्गति के प्राणियों को ज्ञान दे, जिससे शाश्वत गमन प्राप्त करें।।12।। पुत्र, पुत्री, धन, यौवन, सुजन और मित्र शाश्वत नहीं हैं।।13।। जो सुन्दर वस्तुएँ दिखाई देती हैं वे इन्द्रधनुष जल के बबूलों और पानी के बादलों के समान (क्षणभंगुर) हैं।।14।।

घत्ता—जगत के ईश्वर जिनेन्द्र चौबीस, तीर्थंकर, कुलकर-वृन्द, फणीन्द्र, मनुष्य, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ बलभद्र तथा नारकी सभी को पकड़ करके यम ग्रस लेता है।।5-16।।

(5-17)

अमरसेन-वइरसेन का आत्म-चिन्तन तथा दीक्षा हेतु निवेदन-प्रस्तुति

हे राजन! हे अमरसेन-वइरसेन सहोदर! पुद्गल अपना नहीं होता है।।1।। छहों रसों से पोषित यह शरीर जीव के साथ नहीं जाता है।।2।। कुटुम्बी, पुत्र, स्त्री, भवन-कोई भी शाश्वत नहीं, सभी नाशवान हैं/नष्ट हो जाते हैं।।3।। हे राजन! निश्चय से जो जिनेन्द्र भगवान ने कहा है वही मैंने कहा है। उपदिष्ट धर्म दोनों भाईयों ने सुना और वे तपश्चरण परअनुरागी हुए।।5।। जिनके तपश्चरण पर भाव हुए (ऐसे वे दोनों कुमार) मुनि को सुरक्षित छोड़कर अपने घर गये।।6।। परिजनों सहित स्वजन और मित्रों की वे सेवा करते हैं।।7।। सौतेली माता के कारण कुमारों के हृदय में उत्पन्न शल्य दूर हुई/वे निःशल्य हुए।।8।। तेज से परिपूर्ण दोनों भाई अपने अपने वाहनों पर आरूढ़ हुए।।9।। और पुरजनों सहित नगर का मोह त्याग करके (नगर से) बाहर निकल गए। राज्य का उनके मन में क्षोभ उत्पन्न नहीं होता है।।10।। वहाँ वे श्रेष्ठ चारित्र धारण करते हैं। उन्होंने निर्मल मन से अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन किया।।11।। वे भव्य-नव यौवन, धन, परिजन, स्त्री और मित्र आदि की समस्त चिन्ता छोड़कर, गर्व विहीन, निर्विकार चित्त से अपने नरभव सफल करते हैं।।12-13।। जो लोभासक्त जीवों को मारते हैं वे हीन (अपंग) और जो मिथ्यात्व तथा मदिरा के वशीभूत हैं वे क्षुब्ध होते हैं।।14।। (जो) माया और मद रूपी रस के वशीभूत हैं, सप्त व्यसनों के भोगी हैं, वे विषय गार्हस्थिक भार से जलकर निश्चय से क्षुब्ध होते हैं।।15।। दीन-पंचेन्द्रियों के विषयों को ही महत्व देते हैं अपने चेतन (आत्मा) को महत्व नहीं देते (अतः) वे दुःखी होते हैं।।16।। जो सांसारिक लाखों योनियों में भ्रमते हैं। वे असंख्य गृहस्थ दुखी दिखाई देते हैं।।17।। जो दुर्लभ नरभव पाकर सुधर्म नहीं करता इस संसार में वह मनुष्य अजन्मा ही

है।।18।। आशाओं से कृतार्थ (रहित) ये दोनों भाई धन्य हैं, वन्दनीय और प्रसंशनीय हैं।।19। इस प्रकार वन में जाते हुए नगरवासी मनुष्यों के द्वारा उन कुमारों की प्रशंसा (स्तुतियाँ) की गयीं।।20।। वे माघ मास में पल भर में तपोवन में वहाँ गये जहाँ सारिका-मैना पक्षी कलरव करते हैं।।21।।

घत्ता–उस निर्जन वन में उन्होंने निष्काम, सार स्वरूप मुनिराज को देखकर उनकी वन्दना की। इसके पश्चात् सुन्दर-सुखद वचनों से विनय पूर्वक कहा–हे स्वामी (हमारी) उपेक्षा मत करो।।5-17।।

(5-18)

अमरसेन-वइरसेन की दीक्षा एवं परिजनों का व्रत-ग्रहण-वर्णन

हे मुनिराज! लोगों को संसार सागर से पार उतारने वाली सार स्वरूप हमें दीक्षा दीजिए।।1।। तुम्हारे प्रसाद से गृहस्थ मनुष्य दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग करके तप करते हैं।।2।। मुनिनाथ ने ऐसा सुनकर उन्हें सुखकारी दुर्धर महाव्रत दिये।।3।। (दोनों भाई) देह की शोभा रखने वाले उज्ज्वल सिर के मुकुट, हाथों के कंगन, कानों के कुण्डल, कमर की करधनी, सुन्दर वस्त्र, पुष्प, मधुर शब्द करने वाले नूपुर और विद्याओं को पलभर में उतार कर पृथ्वी पर वैसे ही त्याग देते हैं जैसे आकाशगामी विद्याधर आकाश मण्डल को क्षण भर में त्याग देते हैं।।4-6।। शरीर और सांसारिक भोगों से वे उदासीन हो जाते हैं और दीक्षा ले लेते हैं। धन्य हैं (वे) पंच परमेष्ठी का नाम स्मरण करके बिना दुखी हुई सिर के केश उखाड़ते हैं/केशलोंच करते हैं।।7-8।। इसके पश्चात् (दोनों भाइयों के) माता-पिता और अन्तःपुर के लोगों ने मुनि के पास सुखकारी दीक्षा ली।।9।। संसार को असार जानकर अनेक राजाओं और रानियों ने दीक्षायें लीं।।10।। इतर जनों के द्वारा मुनि को प्रणाम किया जाकर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया गया। दोषों में फँसे हुए किन्हीं लोगों ने आत्म-निन्दा-गर्हा की और मुनि

को प्रणाम करके गृहस्थ के व्रत ग्रहण किये।।11-12।। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार व्रत और तप ग्रहण करके मुनि को नमस्कार करते हुए सभी शीघ्र चले गये।।13।। इस प्रकार मुनीश्वर दोनों भाई निष्काम होकर दोनों प्रकार के तप तपते हैं।।14।।

घत्ता—वे दु:खी रहित मन से दो-दो, तीन-तीन मास के उपवास करते हुए सोते हैं। भव-भ्रमण दोष को सुखाने हेतु सुखकर अनशन करना मुनि ने प्रथम तप बताया।।5-18।।

(5-19)

अमरसेन-वइरसेन का बाह्य तपाचरण-वर्णन

मुनि-अमरसेन-वइरसेन आहार-बेला में श्रावक के घर विशुद्ध आहार ग्रहण करते हैं।।1।। रसों का गृद्धता का त्याग करके भूख से कम खाना (ऊनोदर/अवमौदर्य) आगम-भाषित दूसरा तप कहा है।।2।। रसना इन्द्रिय अन्य इन्द्रियों के निरोध का हेतु है। वस्तु संख्यात्मक उसके भेद हैं।।3।। चित्त-प्रसार का निवारण करना, धन त्यागना पवित्र तप है।।4।। घी, दूध, दही, शक्कर आदि प्रमुख द्रव्यों का मुनि गर्व रहित होकर नियम लेते हैं।।5।। वे श्रेष्ठ मुनि छहों रसों को नहीं भोगते। अनिंद्य रसपरित्याग तप यही है।।6।। ये वहाँ कोई दूसरा भव्य नहीं सोता ऐसे एकान्त स्थान में सोने बैठने का स्थान देखकर रहते हैं।।7।। जहाँ अंग परस्पर में लगते/स्पर्श करते हैं वहाँ सूक्ष्म-जीवों का क्षय होता है।।8।। इस प्रकार सत्य और असत्य का सार जानकर वे मुनि दुर्निवार तप में केलि करते हैं।।9।। वे मुनि अपनी देह को तृण के समान गिनते/मानते हैं। सूर्य की किरणें तपने पर (ग्रीष्म में) वे पर्वत पर, वृक्ष तल शिलातल पर, शिशिर के शीत में पर्वत पर और वर्षाकाल में वृक्षों के नीचे रहते हैं।।10-11।। दोष-रहित वे वन में रात्रि में बिना किसी शंका के दण्डासन, मृतकासन, वज्रासन, पल्यंकासन, पद्मासन और गोदोहासन इन छह आसनों से स्थिर मन में रहते हैं।।12-13।। इस प्रकार मुनि अमरसेन-वइरसेन वहाँ आभ्यान्तर

तप करते हैं।।14।।

घत्ता—बिना प्रायश्चित और माया-त्याग के यहाँ विशुद्ध तप नहीं होता। वह प्रधानतः, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और गुरु तथा परमेष्ठियों की विनयपूर्वक होता है।।5-19।।

(5-20)

मुनि अमरसेन-वइरसेन का आभ्यन्तर तप एवं राजा देवसेन का उनकी वन्दनार्थ आगमन-वर्णन

(वे दोनों मुनि) संघ के थके हुए या बीमारी से ग्रस्त पीड़ित उपाध्याय और (अन्य) मुनियों की दस प्रकार से वैयावृत्ति करते हैं।।1।। शाश्वत आगम-शास्त्रों का पापहारी निरन्तर स्वाध्याय-तप करते हैं।।2।। देह-त्याग करके भी रत्नत्रय को भाते हैं (कायोत्सर्ग) और पृथ्वी पर धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ध्याते हैं।।3।। इस प्रकार बारह प्रकार के तप पालते हुए पूर्वकृत कर्ममल धोते हैं।।4।। पृथ्वी पर विहार करते हैं, तीर्थों की वंदना करते हैं और भव्यजनों को धर्म-पथ पर लाते हैं।।5।। चारों अनुयोगों को हृदय में भाते हैं (और) लोगों को शास्त्रोक्त रीति से श्रुत समझाते हैं।।6।। उन्होंने सभी लोगों को जैनधर्म से सम्बोधित किया। उनका मिथ्यात्व वैसे ही शान्त हो जाता है जैसे सिंह का बोध होते ही हाथी मौन हो जाते हैं।।7।। (वे) धन-धान्य और लोगों से परिपूर्ण देश के सुन्दर देवालय में आते हैं।।8।। राजाओं से सम्मानित राजा देवसेन अपनी भार्या (सहित) वहाँ आया और दोनों अपने सिंहासन पर बैठे। इसी बीच वनपाल आया।।9-10।। (उसने) नए फूल और फलों से भरी टोकरी राजा के आगे रखकर और अपना सिर झुकाकर (कहा) हे राजन! आपके नन्दन वन में लोक को सुखकारी दो मुनिराज आये हैं।।11-12।। (राजा) आनन्द-भेरी बजवाता है, भेरी की आवाज से पुरजन आ जाते हैं।।13।। राजा एकत्रित हुए परिजन और पुरजनों के साथ मुनियों की वन्दना तथा

पाद-भक्ति के लिए गया।।14।।

घत्ता–राजा ने मन, वचन और काय से मुनियों की वन्दना की और मुनि से अपने लिए हितकारी धर्म समझाने का निवेदन किया।। निवेदन सुनकर मुनि कहते हैं–हे राजन! सुनिये–सम्यग्दर्शन अशुभहारी है।।5-20।।

(5-21)

अमरसेन-वइरसेन मुनि का देवसेन के देश में आगमन एवं देवसेन को सम्यग्दर्शन तथा जिनेन्द्र पूजा-फल-वर्णन

ध्रुवक-शास्त्र प्रमाणित दृढ़ सम्यग्दर्शन पच्चीस दोषों से रहित होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के होते ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सुशोभित होते हैं, उसके बिना ज्ञान और चारित्र नहीं होते।।छ।। वह सर्व प्रथम जिनेन्द्र ने गणधरों को कहा पश्चात् उनके द्वारा वह मुनियों को कहा गया।।1।। मुनियों ने विद्वान श्रावकों को कहा और उनके द्वारा अपनी भावना के अनुसार विवेक पूर्वक ग्रहण किया गया।।2।। हे राजन्! पाषाणों में नागवज्रमणि जैसे सम्यग्दर्शन को पूजो।।3।। इससे जिसका रूप चला गया है वह कुरूप रूप युक्त हो जाता है, निर्धन-धनवान बन जाता है।।4।। निष्क्रिय जन के तप और व्रत-क्रिया बढ़ती है, मूर्ख-पण्डितों में अग्रसर हो जाता है।।5।। पति के त्याग देने से जिस युवा कुलीन स्त्री के बिना घर की वृद्धि नष्ट हो जाती है, इससे वह कुलांगना प्राप्त हो जाती है।।6।। सम्यक्त्व के बिना सभी प्रमुख दान, पूजा और उपवास आदि नहीं शोभते।।7।। इसी कारण से जिस भव्य जनों को सम्यक्त्वपूर्वक की गई पाप-भावहारी जिन-पूजा का फल उत्पन्न हुआ है उसे सर्व प्रथम कहता हूँ।।8-9।। इस जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र की पूर्व दिशा में आर्यखण्ड में नभस्पर्शी भवन वाली कच्छावतीदेश की सुसीमा नगरी है, वह ऐसी प्रतीत होती है मानों सुख की सीमा स्वरूप विधाता ने उसकी रचना की हो।।10-11।। प्रशस्त चक्रवर्ती की भूमि से सुशोभित उस नगर का

वरदत नाम का राजा था।।12।। किसी एक दिन वनपाल ने हाथ में फल-फल लाकर विनय की।।13।। हे स्वामी! शिवघोष नाम के तीर्थंकर की सुशोभित एवं अबाधित समवशरण-लक्ष्मी नगर के बारह पर्वत की तलहटी में आकर विराजमान हैं। उन गुरु से भक्तिपूर्वक सूत्र (आगम) सुनिएगा।।15।। नगर का राजा परिजनों के साथ गया और उसने भक्तिपूर्वक वीतरागी की वन्दना की।।16।। पश्चात् (गुरु ने) दु:ख राशि की उन्मोचिनी और सुखदायिनी धर्म-अधर्म सम्बन्धी वार्ता की।।17।। वे छह द्रव्य, (नौ) पदार्थ और सात तत्त्वों तथा सत्य को सोचकर कहते हैं/समझाते है।।18।। प्रभुता से सहित स्वर्ग की दो अप्सरा-देवियाँ स्वामी की शरण में आयीं।।19।। जिनेन्द्र शिवघोष मुनि को नमस्कार करके (गुरु) के समीप बैठ गयीं। राजा भी उनके पास जाकर उपहास करता है (कौतुक वश देखता है)।।20।।

घत्ता—राजा निर्लिप्त भाव से मुनि से पूछता है—हे स्वामी! मेरे मन में आश्चर्य बढ़ रहा है। ये दोनों अप्सराएँ कहाँ से सुखपूर्वक उपस्थित हुई हैं।।5-21।।

(5-22)

अमरसेन-वइरसेन कृत अप्सराओं का पूर्वभव-वर्णन

मुनि कहते हैं—हे राजन! क्या पुत्र, क्या मित्र और क्या मकान सभी में झगड़ा है। इसी से इन्द्र साथ नहीं आया है। ये (अप्सराएँ) अभी-अभी उत्पन्न हुई हैं इसी कारण पीछे आई हैं।।1-2।। वह सुनों, जिस पुण्य से सभी लोगों को आनन्द हुआ और ये स्वर्ग में उत्पन्न हुई।।3।। इसी श्रेष्ठ नगर में दोनों (एक) माली की पुत्रियाँ हुईं।।4।। कुसुमावलि और कुसुमलता। इनमें कुसुमलता छोटी थी। इनका पालन-पोषण पारस्परिक स्नेह से हुआ।।5।। वे प्रतिदिन इस श्रेष्ठ नगर में पिता की फूलों से भरी टोकरी लेकर आते हुए मार्ग में स्थित गगनचुम्बी शिखर वाले जिनमन्दिर की देहरी पर एक-एक नया फूल चढ़ाकर प्रणाम करती हैं और प्रतिदिन जय-जय स्वर कहकर जाती

हैं। इस प्रकार इस स्थान पर कितना ही समय निकल जाता है।।6-9।।

घत्ता–किसी दूसरे दिन पिता की आज्ञा-वश वे दोनों हाथ में पिता की टोकरी लेकर फूलों के लिए सघन वृक्षों में क्षणभर में किसी रस पूर्ण फलवाले अनार की ओर गयीं।।5-22।।

(5-23)

कुसुमावलि ओर कुसुमलता बहिनों की जिनपूजा, सर्पदंश से मरण तथा स्वर्ग-प्राप्ति वर्णन

वहाँ फूल बीनते हुए एक लता में फूला हुआ बड़ा फूल दिखाई दिया।।1।। मैं भी लेती हूँ, मैं भी लेती हूँ कहती हैं किन्तु जिन-मन्दिर की देहरी पर एक भी नहीं चढ़ा पाती।।2।। जिस हाथ से (फूल) लेती हैं सर्प द्वारा डस लिया जाता है। पश्चात् दूसरी (बहिन) का हाथ भी उसी सर्प द्वारा डस लिया जाता है।।3।। जिन-पूजा को भाती हुई मरीं और मरकर स्वर्ग में देव की देवियाँ हुईं।।4।। पीछे आने का यही कारण है, और हे राजन् यही (उनके) शारीरिक-सौन्दर्य का रहस्य है।।5।। ऐसे वचन सुनकर पहले राजा मुनि के चरणों में प्रणाम करके पश्चात् बैठ जाता है।।6।। शीघ्र ही वीतराग (देव) की पूजा की। पूजा में आसक्त इसके अकृत नव (नौ) निधियाँ उत्पन्न होती हैं।।7।। जो कोई संशय रहित होकर आठ प्रकार की सामग्री से जिनेन्द्र की पूजा रचाता है/करता है, उसे क्या संभव नहीं होता। भव्य जनों का यहाँ शीघ्र पदार्थ सिद्ध होते हैं।।8-9।।

घत्ता–हे मगध नरेश! किसी मिथ्यादृष्टि मनुष्य को मन में ऐसी भावना कैसे (हो सकती है) प्रीतंकर नाम का मनुष्य शुद्ध परिणामी होकर भी परिभ्रमण कर रहा है।।5-23।।

(5-24)

प्रीतंकर को पूजन-अनुमोदना-फल-प्राप्ति-वर्णन

वह प्रीतंकर किसी दूसरे दिन पोदनपुर गया और क्षण भर

जिनालय में बैठ गया।।1।। पोदनपुर के राजा के द्वारा पापहारी जिननाथ की पूजा की गई।।2।। उसे देखकर उसने मन में पश्चाताप किया (कि) मेरा सम्पूर्ण जन्म निरर्थक गया।।3।। मेरे द्वारा पूजा की ऐसी रचना नहीं की गई। दूसरों के द्वारा की गई भी कभी नहीं देखी गई।।4।। इस प्रकार अनुमोदना-गुण से सहित वह उसी देश में असमय में मरा।।5।। (मरकर वह) दिव्य तेज से युक्त यक्ष देवों का स्वामी हुआ। मुनि संघ के उपसर्ग से दावाग्नि से जलते हुए मुनि संघ की रक्षा करके वह विशुद्ध इस पर्याय से चयकर मुदिदोदय नाम का विजयार्ध के निवासी विद्याधरों का स्वामी विद्याधर (हुआ)।।6-8।। इसके पश्चात् जिनेन्द्र की पूजा के पुण्य वे वैभवशाली सनत्कुमार स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।।9।।

घत्ता—पूजा के भाव रखकर वह लंकापुरी में आकर राजा के रूप में प्रकट हुआ। वह कुछ समय पृथ्वीतल को भोगकर पश्चात् शिवपुर (गया)। कवि माणिक्क कहते हैं कि मैं भी शिवपुर पाऊँ।।5-24।।

हिन्दी अनुवाद

इस प्रकार चारों वर्ग की कहने में सरल कथा रूपी अमृतरस में परिपूर्ण श्री पंडित माणिक्क कवि द्वारा साधु महणा के पुत्र देवराज चौधरी के लिए रचे गये महाराज श्री अमरसेन के इस चरित्र में अमरसेन-वइरसेन का प्रवज्याग्रहण, महाराज देवसेन की वन्दना, भक्ति और उनसे जिन-पूजा एवं धर्म-फल श्रवण-वर्णन करने वाला यह पाँचवां परिच्छेद पूर्ण हुआ।।सन्धि।।5।।

सौन्दर्य रूपी अमृत से शरीरवान, सौभाग्यशाली, लक्ष्मीवान, मोतियों के हार और फूले हुए काँस के समान यश से दिशाओं रूपी मुख को श्वेत उज्ज्वल रखने वाला वीर जिनेन्द्र द्वारा भाषित कथा आलाप सुनने में लीन कर्ण वाला साधु महणा का देवराज नाम का विद्वान पुत्र सदा आनन्दित रहे, इति आशीर्वाद।। ❑❑❑

षष्टम् परिच्छेद

(6-1)

देवराज चौधरी के निवेदन पर कवि द्वारा कथित मेंढक-पूजा कथा वर्णन

ध्रुवक-शत्रु रूपी हाथी के लिए बाधा स्वरूप-साहु महणा के पुत्र चौधरी देवराज ने इस प्रकार जिनेन्द्र की पूजा का फल सुनकर, मेंढ़क की जैसी कथा हुई उस कथा (के कहने का निवेदन किया)।।छ।।

(चौधरी देवराज कहता है हे माणिक्कराज!) जिनेन्द्र भगवान! की अर्चना और भावना से मन की इच्छा के अनुसार देवपद प्राप्त किया जाता है।।1।। शरीर से विरक्त होकर मन, वचन और काय से जिसने (जिनेन्द्र की पूजा का) भाव किया है, वह कोई प्रिय मेंढक देव-समूह से सेवित तथा अप्सराओं सहित स्वर्ग में देव हुआ।।2-3।। वह वीर भगवान के समवशरण में प्राप्त हुआ/गया, उसने भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हुए सम्यक् रूप से गुण-स्तुति की।।4।। चन्द्र स्वरूप मगध-नरेश श्रेणिक के द्वारा देखे जाने पर ज्ञान दिवाकर गणधर से पूछा गया।।5।। हे गुण समूह के आगार गणधर! अमन्द बुद्धि यह मेंढक कौन है? देव कैसे हो गया?।।6।। चौधरी देवराज ने कहा हे कवि! गणधर ने श्रेणिक से जैसा यह रहस्य कहा, मुझे कहो और मेरा संशय मिटाओ। कवि कहते हैं सुनो।।7।। इन्हीं श्रेणिक राजा की नगरी में शत्रु-भय को दूर करने वाला महान धनवान् वणिक् नागदत्त (था)।।8।। उसकी गुणों से मनोज्ञ भयदत्ता भार्या (थी)। वणिक ने आर्त्तध्यान से प्राण त्यागे (और) अपने घर के पास वापी-प्रदेश में (बावड़ी में) जल रमण करने वाली कोई मेंढक हुआ।।।9-10।।

घत्ता-वह मेंढक (पूर्वभव को) अपनी सेठानी का मन दुखाने उसकी शरण में जाता है। सामने होकर दौड़ता है, सिर तथा पैर दिखाता है तथा आंचल पकड़कर ऊपर चढ़ता है।।6-1।।

(6-2)

सुव्रत मुनि से मेंढक की क्रियाओं का कारण ज्ञात कर तथा उसे पूर्वभव का अपना पति जानकर सेठानी द्वारा स्नेह-प्रदर्शन-वर्णन

सेठानी जहाँ-जहाँ आती है (वह मेंढक) वहाँ-वहाँ आगे-आगे उचकता है। दौड़ता है।।1।। (सेठानी) उसके भय से पानी लेने नहीं जाती है, रात-दिन मन में चिन्ता करती हुई रहती है।।2।। एक दिन वन में सेठ की पत्नी ने बार-बार नारि-जन्म की निन्दा करते हुए निष्काम, तीन ज्ञान के धारी सुव्रत नामक ऋषि से पूछा।।3-4।। हे स्वामी! इसमें क्या रहस्य है, क्या कारण है? (जो कि यह) कुटिल-(मेंढक) क्षण-क्षण मेरे पीछे लगा रहता है।।5।। मुनि के द्वारा उत्तर दिया गया-वह सेठ नागदत्त है। इस जिनभक्त को क्या शारीरिक पीड़ा दी थी।।6।। यह आर्त्तध्यान से मरकर मेंढक की देह में उत्पन्न हुआ और तुरन्त अपनों के (पास) आया।।7।। स्नेह वश तुझे देखने शरण में आता है, ऐसा जानों।।8।। वह सेठानी भयदत्ता अपने कृत्य पर खेद करती है (और विचारती है) हाय! हाय! (यह) उपार्जित कर्मों का संयोग है।।9।। हमारे स्वामी ही जाकर मेंढक हुए हैं, (इस विचार से वह) मेंढक को सहर्ष घर लाकर उसे जहाँ गहरा पानी था वहाँ रखा तथा जिनेन्द्र के द्वारा कथित धर्म की शिक्षा दी/सिखाया।।10-11।।

घत्ता—इस प्रकार उसके घर बावड़ी में रहते हुए एक दिन यहाँ मगध नरेश (श्रेणिक) आये। भव्य जनों को एकत्रित करने के लिए शीघ्र यात्रा-भेरी बजवाई।।6-2।।

(6-3)

मेंढक को जिन-पूजा-फल-प्राप्ति-वर्णन

जिन-यात्रा भेरी की आवाज से भव्य लोग सूर्योदय होते ही चले।।1।। मेंढक की जिनेन्द्र के चरणों की पूजा करने के भाव से

हर्षित मन से दाँतों के अग्रभाग से कमल-पुण्य को पकड़कर मार्ग में चलते हुए संकीर्णता ज्ञात कर राजा श्रेणिक के हाथी के पैरों में जाकर पिचल गया और बेचारा शुभ भावों से प्राण-त्याग करके स्वर्ग में देव हुआ।।2-4।। हे राजन! इसलिए उसने ध्वजा में मेंढक अंकित कर रखा है। इसने आज भी अच्छा कृत्य (काम) किया है।।5।। प्रत्यक्ष देखों विवेक-रहित तिर्यंच मेंढक भी स्वर्ग में देव हुआ।।6।।

घत्ता—यहीं कोई श्री नाम की ब्राह्मण की पुत्री ने कुसुमांजलि व्रत लेने के पश्चात् जिन मरण करके शीघ्र सुरेन्द्र का पद पाया। इसके पश्चात् तप करके सिद्ध गति को प्राप्त हुई।।6-3।।

(6-4)

राजा देवसेन को अमरसेन-मुनि द्वारा कथित कुसुमांजलि व्रत कथा

हे राजन् जहाँ वह व्रत आचरित हुआ उसे जिनेश्वर ने संक्षेप से (इस प्रकार) कहा है।।1।। जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के दायीं ओर मंगलावती देश की रत्नसंचयपुरी में राजा वज्रसेन की परमप्रिय जयावती नाम की पट्टरानी एक दिन महल के ऊपरी भाग पर बैठकर सहेली की आमगन दिशा में, नगर-मार्ग में धूल-धूसरित देह वाले, बहु दुर्वचन कहते हुए, भूमि लाँघ-लाँघ कर चलने वाले मन्दिर के अध्यापक को हाथ से पीट-पीट कर समर्पित छात्रों को ले जाते हुए देखती है।।2-7।। पुरजनों के नग्न बालकों को देखते हुए (वह) मन में पुत्र-जन्म की इच्छा करती है।।8।। इसके पश्चात् महान् दुख से आँसू बहाते हुए वह तुरन्त पति के द्वारा देखी गई कि हृदय त्रास का क्या कारण है? उसने भी कहा कि आजन्म से सुखी हूँ।।9-10।। पुत्रजन्म दुखकारी दिखाई देता है। राजा उन्मादित होकर रानी से कहता है।।11।। वह राजा दुख उपशमन करने और परमार्थ के लिए रानी को जिन-मन्दिर ले गया।।12।। वहाँ (उसने) रोग, शोक और सन्ताप मिटाने वाले वीतराग की भाव-पूर्वक पूजा।।13।।

पश्चात् श्रेष्ठ ऋषि श्रुतसागर को नमस्कार करके राजा चिन्तित हृदय से पूछता है।।14।।

घत्ता–हे मुनिराज! माता-पिता की निधि, वंश के योग्य पुत्र होगा अथवा नहीं? मुनि कहते हैं–हे राजन! विजयलक्ष्मी का वरन करने वाला चक्रवर्ती पुत्र होगा।।6-4।।

(6-5)

श्रुतसागर मुनि की वंदना-पुत्र उत्पत्ति-रत्नशेखर की बाल क्रीड़ा-मणिशेखर से वार्तालाप

राजा और रानी श्रुतसागर ऋषि के चरणों की भक्तिपूर्वक वन्दना करके संतुष्ट होकर घर आये।।1।। कुछ दिनों बाद परिजनों के सुखों की वृद्धि करने वाला और बैरियों का सन्तापकारी पुत्र उत्पन्न हुआ।।2।। शिशु-अवस्था में ही उसे श्रेष्ठ शास्त्र पढ़ाये और रानी की प्रशस्त इच्छाओं की पूर्ति की।।3।। रत्नशेखर नाम से गुणवान् (पुत्र के साथ) सुखपूर्वक रहते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत होता है।।4।। उस रत्नशेखकर को वन-क्रीड़ा के समय एक विद्याधर आकाश से उतर कर प्राप्त हुआ/मिला।।5।। दोनों एक-दूसरे से मिले, (परस्पर) दर्शन से मोह हुआ दोनों ने मन की चिन्ताओं का निरोध चाहा।।6।। परस्पर में बातचीत करके वे दोनों परम मित्र हो गये।।7।। मणिशेखर के द्वारा पूछा गया कि तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? और किसके पुत्र हो?।।8।। तुम्हारे ऊपर बहुत स्नेह बढ़ रहा है। यह विद्याधर उस वज्रागार रत्नशेखर से कहता है।।9।। विजयार्द्ध पर्वत की रम्य दक्षिण श्रेणी में परम धर्मात्मा राजा जयवर्मा है।।10।। उनकी प्रिया विजयादेवी का मैं पुत्र हूँ। वक्रता से धनवाहन नाम से कहा जाता हूँ।।11।।

घत्ता–राजा (जयवर्मा) मुझे राज्यलक्ष्मी देकर पर्वत पर गये और द्विविध तप वाले मार्ग में स्थिर हुए। पश्चात् भाग्यशाली मैंने क्षमा भाव से तलवान के द्वारा विद्याधरों को जीता और चक्रवर्ती हुआ।।6-5।।

(6-6)

मणिशेखर की स्वयं निर्मित-यान से मेरु जिनालय-वन्दना इच्छा एवं यान-रचना

अपनी इच्छानुसार आकाश में विहार करता हुआ आकाशगामी यान के स्खलित हो जाने से यहाँ आ पहुँचा हूँ।।1।। तुम्हारे दिखाई देने पर प्रजा ने पूछा-बैरी है, (तब) मैंने सम्पूर्ण (वृत्त) कहकर (तुझे अपना) हितैषी बताया।।2।। अब आप अपना वृत्तान्त (परिचय) प्रकट करो, माता-पिता और नगर बताओ।।3।। वहाँ मणिशेखर कहता है—इस रत्नसंचय नगरी में राजा वज्रसेन ने युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त की।।4।। मैं मणिशेखर पुत्र हुआ, वनक्रीड़ा के लिए यहाँ आया हूँ।।5।। दोनों में पारस्परिक वह स्नेह से अधिक मैत्री भाव बढ़ा।।6।। (रत्नशेखर ने कहा मित्र धनवाहन) सुनो! मेरे मन में रात दिन मेरु पर्वत के जिनालयों की वन्दना करने की इच्छा होती है।।7।। धनवाहन कहता है—शीघ्र मेरे आकाशगामी इच्छानुसार गमनशील विमान पर चढ़ो।।8।। धनवाहन से ऐसा सुनकर मणिशेखर कहता है—यदि सुखकारी अपना विमान हो तो उस विमान पर चढ़कर जिनालयों को बन्दूँ। पराये आकाशगामी यान से मुझे आनन्द नहीं आता।।10।।

घत्ता—इसलिए मणिशेखर के द्वारा वह बहुत दिन मंत्र की आराधना की गई। सिद्ध हुई विद्या ने पल भर में लोक में प्रसिद्ध सुशोभित विमान की रचना की।।6-6।।

(6-7)

मणिशेखर की निज विमान से अढ़ाई-द्वीप वन्दना तथा मदन-मंजूषा-परिणय वृत्त वर्णन

वे दोनों (मणिशेखर और धनवाहन) उस विमान पर चढ़ कर सुमेरू पर्वत और अढ़ाई-द्वीप के मनोज्ञ सम्पूर्ण जिनालयों की वन्दना तथा अर्चना करके सिद्धकूट के जिन-मन्दिर में आये।।1-2।। जिनेन्द्र की पूजा करके जैसे ही बैठे कि वहाँ उन्हें जिनेन्द्र की पूजा करती

हुई कामोत्पादिनी मदनमंजूषा नामक कृशोदरी मनोज्ञ कन्या दिखाई दी।।3-4।। वह (कन्या) मणिशेखर को अपने हृदय में विश्राम देकर काम-बाणों से चित्त में संरोधित हो गई।।5।। उस कन्या ने अपने घर आकर माता-पिता को वृत्तान्त की जानकारी दी।।6।। राजा के द्वारा मणिशेखर अपने घर (राजभवन) ले जाया गया और रोका गया तथा स्वयंवर रचाया गया।।7।। जनमत के प्रत्यक्षीकरण हेतू लक्ष्मी के भण्डार समस्त विद्याधर बुलाए गए।।8।। स्वयंवर में उस श्रेष्ठ कन्या ने भी रत्नशेखर के सिर में माला पहनाई।।9।। सभी (आये) विद्याधर उसके विरुद्ध हो गए। तब तलवार लेकर उस रत्नशेखर द्वारा व रोके गए।।10।। वे उपहारा देकर (रत्नशेखर की) शरण में आये और रत्नशेखर ने उस मनोज्ञ कन्या को विवाहा।।11।।

घत्ता–कुछ दिन पश्चात् कृत निश्चय के अनुसार प्रिया सहित अपने नगर गया। वहाँ निर्मल आकाश में भक्त-पत्नी के साथ यह युगल देखा गया।।6-7।।

(6-8)

धनवाहन को राज्य लाभ तथा मणिशेखर का प्रिया में स्नेह होने का कारण बताने के संदर्भ में अमितगति मुनि द्वारा कथित प्रभावती-कथा

किसी दूसरे दिन धनवाहन मणिशेखर से रुष्ट होकर मेरु पर्वत के शिखर पर गया।।1।। वहाँ उसने चारण ऋद्धिधारी अमितगति की वन्दना करके शुद्ध बुद्धि से धर्म भी सुनकर उसने अपने पुण्यास्त्रव से अपने पूर्वजों के अजेय राज्य की प्राप्ति तथा प्रियमित्र में स्नेह का कारण पूछा। मुनिवर उसे कहते हैं।।2-4।। भरतक्षेत्र में मंगलावती नगरी है जहाँ जिनेन्द्र तीर्थंकर संभवनाथ ने कर्म-शत्रुओं का घात किया था।5।। वहाँ जितशत्रु नाम का राजा और कंचनमाला उस राजा की प्रिया जानों।।6।। श्रुतप्रवर-श्रुतकीर्ति पुरोहित और हृदयहारिणी बन्धुमती (उसकी) स्त्री थी।।7।। इन दोनों की पुत्री गुणों की निधि

प्रभावती ने जिनागम का विधि-पूर्वक स्वाध्याय किया था।।8।। एक दिन शय्या पर सोते हुए बन्धुमती सर्प द्वारा डस ली गई।।9।। पुत्री-विप्र श्रुतकीर्ति के निकट दुखी होती हुई रोती है। अग्नि-संस्कार करने को (माता की मृत) देह नहीं छोड़ती/देती।।10।। कह-कहकर बड़ी कठिनाई से उसे जलाया। (पश्चात्) शोक रहित होकर दीप प्रज्ज्वलित किया।।11।।

घत्ता—शोकाकुलित स्वजन-जन (उस प्रभावती को वहाँ ले गए) जहाँ मुनिराज (उसके पिता) थे, उन्होंने वाणी से सम्बोधन दिया। भय और अन्य शोक आदि निवृत्त होकर उसने शीघ्र द्विविध तप धारण कर लिया।।6-8।।

(6-9)

प्रभावती द्वारा श्रुतकीर्ति का समझाया जाना, रुष्ट होकर श्रुतकीर्ति द्वारा प्रभवती को कैलास पहुँचाना, प्रभावती का महाव्रती होना तथा पद्मावती देवी का समागम-वर्णन

वह दिगम्बर (प्रभावती का पिता) सशंकित होकर चंचल-चित्त हो गया। उसने दृढ़ता पूर्वक मांत्रिक वचनों से सिद्ध की गई विद्या को ले जाकर उसे प्रभावती पर छोड़ा और स्वयं को भोग-प्रवृत्तियों में लगाया।।1-2।। उसे प्रभावती रातदिन कहती है/समझाती है किन्तु इसके कर्म ठीक नहीं होते।।3।। हे विप्र! रत्नत्रय-चारित्र को पाकर दुख के पिटारे तुष-खण्ड को कौन ग्रहण करता है।।4।। इस प्रकार बार-बार कहे गए पवित्र वचन उस भ्रष्ट श्रुतकीर्ति को दुखदायी होते हैं।।5।। इस पुत्री के द्वारा मैं सताया गया हूँ। हमें इसने सर्प के समान काले हृदय का समझा है।।6।। इसके पश्चात् क्षणभर में क्रोध से श्रुतकीर्ति ने पुत्री को निर्जन वन में ले जाकर क्षणभर में विद्या से मिला दिया।।7।। वहाँ वह (पुत्री प्रभावती) शुभ-ध्यान में स्थित होकर भय-मुक्त हो अनुप्रेक्षाओं को भाती है।।8।। इसके पश्चात् देखने में मनोज्ञ उस प्रभावती को देखने पिता ने विद्या भेजी।।9।।

विद्या ने उस प्रभावती को सिद्धक्षेत्र कल्याणभूमि कैलास पर्वत पर ले जाकर स्थापित किया।।10।। प्रभावती सभी जिनेन्द्रों की वन्दना करके जिनालय में जाकर महाव्रतों को प्रकट करके स्थित हो गई।।11।।

घत्ता–वहाँ सैकड़ों देवों से सेवित पद्मावती देवी वहाँ आकर जिनेन्द्र की वन्दना करके जब बाहर जाती है तब जिनालय के प्रांगण में उसे मन को प्रिय लगने वाली (एक) स्त्री दिखाई दी।।6-9।।

(6-10)

पद्मावती देवी से प्रभवती का कुसुमांजलि-व्रत-कथा श्रवण-वर्णन

पद्मावती देवी के द्वारा प्रभावती से पूछा गया। हे शुभ भावने! तुम कौन हो, हे पवित्र-आत्मन्! कैसे आई हो?।।1।। प्रभावती ने बिना किसी आशंका के सम्पूर्ण वृत्तान्त उस देवी से कहा।।2।। इसी बीच क्षण भर में चारों निकाय के देवों की दुंदुभि ध्वनि वहाँ आयी।।3।। उन देवों को देखकर प्रभावती ने (पद्मावती देवी) से पूछा–देवों ने किस कारण से आकर उत्सव किया है?।।4।। पद्मावती देवी कहती है–आज भादव मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी (तिथि) का श्रेष्ठ शुभ दिन है।।5।। आज प्रसिद्ध कुसुमांजलि (व्रत) का दिन है इसलिए इस पवित्र स्थान में सुर-वृन्द और इन्द्र आये हैं।।6।। (पुनः प्रभावती पूछती है हे देवी!) देवांगनाएँ इस व्रत को किस प्रकार रचाती हैं/करती हैं–मेरे आगे सम्पूर्ण विधि कहें।।7।। (पद्मावती देवी कहती है–हे प्रभावती) भादव मास के अन्त में जिस किसी प्रकार पृथ्वी पर इसे प्रकाशित करो।।8।। इस मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के दिन से लगातार पाँच दिन करो।।9।। चौबीसों जिनेन्द्र-प्रतिमाओं का अभिषेक करके सुख की हेतु यह पूजा रचाकर चौबीसों जिन-प्रतिमाओं के आगे मनोज्ञ तन्दुल चढ़ाकर उनकी पूजा करो।।10-11।। इसके पश्चात् मनोज्ञ एक-एक पुष्प प्रत्येक तीर्थंकर (प्रतिमा) को चढ़ाओ।।12।। इसके पश्चात् तीर्थंकर का नाम उच्चारण करते हुए

पापों का निवारण करने वाली परिक्रमा करके पाँच विभिन्न रंगों के पुष्पों का गुच्छा बनाकर जिननाथ को कुसुमांजलि चढ़ावें।।13-14।। फूलों के अभाव में सुन्दर बिना टूटे अक्षतों की पुष्पांजलि देकर व्रत धारण करें।।15।।

घत्ता—तीन वर्ष प्रमाण व्रत करें पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करें। उद्यापन में जिनालय में सभी तीर्थंकर प्रतिमाओं की स्थापना करके सभी की पूजा करें।।6-10।।

(6-11)

कुसुमाञ्जलि व्रत-विधि तथा प्रभावती का व्रत-ग्रहण-वर्णन

जिन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराकर पात्रों को सहर्ष धन दान करें।।1।। जो पुस्तक लिखवा कर पृथ्वी पर ज्ञान के विचार से यतीश्वरों को देता है, वह भव-भव में पण्डित-विद्वान् के रूप में उत्पन्न होता है और केवलज्ञान से विभूषित होता है।।2-3।। अपनी शक्ति के अनुसार कांजी लेकर एकासन अथवा उपवास करें।।4।। (एकासन अथवा उपवास का) फल-भाव शुद्धि के अनुसार होता है। भाव-शुद्धि के बिना व्रत, तप सभी निष्फल हैं।।5।। ऐसा सुनकर कन्या प्रभावती ने पद्मावती की सहायता से प्रसन्नतापूर्वक व्रत ग्रहण किया।।6।। देव-पाँच दिन इस व्रत की साधना करके तत्काल चले गए।।7।। वह प्रभावती भी देवी-पद्मावती को अपनी मृणालपुरी नगरी ले गयी। वहाँ उसे स्थापित करके वह जिनदेव की सेवा के लिए जिनालय गयी।।8।। वहाँ प्रभावती ने परिग्रह-रहित त्रिभुवनचन्द्र नामक श्रेष्ठ ऋषि से अर्हन्त की वन्दना करके तपश्चरण माँगा/महाव्रत लेना चाहा। मुनि के द्वारा तब ज्ञान से वितर्क किया गया।।9-10।। (उन्होंने कहा) हे पुत्री! भव्य है, भव्यपने का विचार किया है, तुम्हारी आयु निश्चित ही तीन दिन की (शेष) है।।11।।

घत्ता—पुण्यवान् शीलवती उस कन्या (प्रभावती) ने ऐसा सुनकर

अनशनपूर्वक तप धारण किया और तत्त्वों का अर्थ-चिन्तन तथा जिनेन्द्र का ध्यान करती हुई कायोत्सर्ग में अचल रूप में स्थित हुई।।6-11।।

(6-12)

प्रभावती और उसके माता-पिता का स्वर्गारोहण-वर्णन

इसके पश्चात् प्रभावती को देखने के अर्थ पिता के द्वारा भेजी गई विद्या ने तपविधि से उसे च्युत करने का घोर उपसर्गों का प्रयोग किया तो वहाँ उसका योग-गुण खण्डित नहीं हुआ।।1-2।। सन्यासपूर्वक मरकर वह अच्युत स्वर्ग में पद्मनाथ नाम का सुहावना देव हुई।।3।। अवधिज्ञान से चिरकालीन बैर को जलाने के पश्चात् देव अपने पूर्वभव के माता-पिता को संबोधने आया।।4।। उसने माता-पिता को अपना चरित्र बताया और विचलित माता को व्रत दिलाया।।5।। अपने गुरु के पास उनकी चरण-वन्दना और निर्मल प्रवर स्तुतियाँ कीं।।6।। लोक में कुसुमांजलि व्रत लेकर भोगोपभोग वाले देव-स्थान (स्वर्ग) में गया।।7।। श्रेष्ठ ऋषि श्रुतकीर्ति शरीर त्याग करके देव के प्रभाव से उसी अच्युत स्वर्ग में उत्पन्न हुए।।8।। (देव के पूर्वभव की माता) अन्त में पद्मनाथ देव की कमला नाम की अप्सरा होकर (पुत्री से) मिल गई।।9।।

घत्ता—पद्मनाथ देव स्वर्ग में चयकर यहाँ तुम रत्नशेखर हुए हो। यह मित्र धनवाहन पूर्वभव का पिता और गेहिनी मदनमंजूषा माता है।।6-12।।

(6-13)

रत्नशेखर की दिग्विजय, चक्रवर्ती पद-प्राप्ति एवं वैभव तथा वैराग्य-वर्णन

भवान्तरों के पठन से (ज्ञात होता है कि) स्नेह टूटता नहीं, चिरकाल के स्नेह से स्नेह और अधिक बढ़ता है।।1।। मुनि से इस

(व्रत) का माहात्म्य सुनकर उस भव्य को धर्म और मोक्ष-लाभ हुआ।।2।। (इसके पश्चात्) मुनि को नमस्कार करके रत्नशेखर अपने राजभवन में आया। इसी बीच पिता ने इसे राज्य देकर तथा वन में जाकर स्वेच्छानुसार मुनि-व्रत धारण किये। मणिशेखर निस्सार पृथ्वी का पालन करता है।।3-4।। छह खंड पृथ्वी मंडल में प्रसिद्ध चक्ररत्न-आयुध उसे घर में प्राप्त हुआ।।5।। नौ-निधियाँ और चौदह रत्न उत्पन्न होते हैं, विद्याधर और भूमिगोचरी राजा जाकर सेवा करते हैं।।6।। धनवाहन सेनापति के रूप में सुशोभित होता है उससे सभी शत्रु-समूह भाग जाता है।।7।। उसकी छियानवे हजार रानियाँ, दस कोटि पदाति और इतनी ही अश्वसेना थी।।8।। उस समय उसके चौरासी लाख रथ और इतनी ही गज-सेना थी। इस सेना के लड़ने से युद्ध में उसकी विजय हुई।।9।।

घत्ता—इसने चिरकाल पृथ्वी तल पर (भोगों को) भोग करके और इन्द्रियों के विषयों में मग्न रहकर बहुत समय पूर्व लिए कुसुमांजलि व्रत का उद्यापन किया। इसके पश्चात् निमित्त पाकर चित्त से विरक्त होते हुए इसने राज्य कंचनपुर के राजा को दे दिया।।6-13।।

(6-14)

कुसुमांजलि-व्रत-माहात्म्य

राजा मणिशेखर ने धनवाहन के साथ राग-द्वेष की दूर से उपेक्षा करके दीक्षा ली।।1।। मदनमंजूषा उदासीनतापूर्वक तप में स्थित होकर आत्मस्वरूप ध्याती हुई धन्य हुई।।2।। मणिशेखर ने सुखकर कुसुमांजलि व्रत प्रकट करके केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् कर्मों का नाश करके शिव प्राप्त किया। धनवाहन भी वहीं उसी स्थान को (मोक्ष) प्राप्त हुआ।।3-4।। मदनमंजूषा दुःखहारी-दुष्कृत तप के अनुसार स्वर्ग में गई।।5।। अन्य कोई भी जो मनुष्य संसार भ्रमण को मिटाने वाले कुसुमांजलि व्रत का विधिपूर्वक किये हुए यश का गोपन करते हुए शक्ति के अनुसार करता है वह ऐसा ही होता है अर्थात् स्वर्ग या

मोक्ष पाता है।।6-7।। व्रताचरण के साथ सांसारिक महान् दुखों का क्षय करने वाली भावनाएँ भी भावें।।8।।

घत्ता–व्रत के फल से विवेक रहित के भी पुत्र हुआ, रत्नशेखर आदि लोक के अग्रभाग में गये। फिर जो निर्भय होकर सम्यग्दर्शन पूर्वक आचरता है वह क्या नहीं पाता है। अर्थात् वह सब कुछ पाता है।।6-14।।

हिन्दी अनुवाद

पण्डित मणि-माणिक्क कवि द्वारा साधु महणा के पुत्र चौधरी के लिए रचे गये चारों वर्ग की कहने में सरल कथाओं रूपी अमृत रस से परिपूर्ण इस अमरसेन चरित में श्री अमरसेन-वइरसेन द्वारा पुष्पांजलि कथा प्रकाशित करने वाला यह छठा परिच्छेद पूर्ण हुआ।।संधि।।6।।

जो देव-वृन्द से वन्दित, काम-बाण का नाशक है, मोह और दोष आदि से मुक्त तथा क्रोध और लोभ आदि से रहित है, जिस मरण के बाद जन्म लेना पड़ता है ऐसे मरण से रहित है। इन्द्रिय-विषयों को मारने में पराक्रमी हैं सर्व सुखों से विमुख, श्याम वर्ण की देहवाले, जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की वे राजा नेमिनाथ-तीर्थंकर मानो जो श्रेष्ठ यति हैं उस देवराज को सुख देवें।।आशीर्वाद।।

❑❑❑

सप्तम परिच्छेद

(7-1)

भरत-वैराग्य एवं त्रिलोकमण्डन-गज-उत्पात-वर्णन

ध्रुवक

हे श्रेणिक! इसे छोड़ते हुए इसके आगे समय पाकर कहूँगा (अभी विगम दूषेण वैश्य भूषण के द्वारा जैसा जिनेन्द्र पूजा का फल प्राप्त किया गया सुना है उसे कहता हूँ।।1।।

रामायण में जिनेन्द्र-पूजा का फल इस प्रकार प्रसिद्ध है, प्रसंग-वश कहने में दोष न होने से कहता हूँ।।1।। राजा रावण का वध करके और लंका विभीषण को देकर तथा सीता को लेकर जब राम अयोध्या आये तभी भरत को वैराग्य उत्पन्न हुआ।।2-3।। वह (भरत) राघव (राम) से कहता है—नाथ! मुझसे मिलें, तप से तृणवत् कृषकाय मैं यहाँ स्थित हूँ।।4।। आप स्वामी हों (अयोध्या के राजा बनें), मुझ बेचारे को क्षमा करें, क्षमा करें (ताकि) मैं इसके पश्चात् जिन-दीक्षा लेता हूँ।।5।। मुझ पर अनुग्रह-कृपा करो, पकड़कर सबके आगे आशीर्वाद दें।।6।। मोह में पड़कर पिता के द्वारा जो आपको वनवास और मुझे राज्य दिया गया है इस अविनय का मरने पर भी नहीं भूलता हूँ, वह भव-भव में तीव्रता से सालता है/कष्ट देता है।।7-8।। राम ने उत्तर दिया—आज से तुम अयोध्या नगरी में सुखपूर्वक राज्य-लक्ष्मी भोगो।।9।। एकछत्र पृथ्वी का पालन करो, पृथ्वी के सभी राजा और विद्याधर दास हैं।।10।। ऐसा कहे जाने पर भी भरत मन से विरक्ति में ही स्थिर रहे, तब राम ने युवा रानियों को आज्ञा दी।।11।। प्रमुख नदी और सरोवर में जाकर भरत को सरागी बनाकर घर आओ।।12।। उनकी सुख देने वाली नारियाँ आकर भरत के साथ सरोवर गयीं।।13।। (भरत) जलक्रीड़ा में अचल और अभंग रहकर बारह भावनाओं को भाते हुए स्थिर रहे।।14।। (वे रानियों के) हाव-भाव और भ्रू-भंगिमाओं से विचलित नहीं हुए। (कवि का

कथन है कि) क्या सुमेरू पर्वत सिंहों से चलायमान हुआ है?।।15।।

घत्ता–(भरत) सरोवर में जाकर बैठ जाते हैं, स्त्रियों के मुखों को निहारते भी नहीं उसी समय त्रिलोकमण्डन हाथी अपने बन्धन की खूँटी को उखाड़कर सैकड़ों घरों को चूर-चूर करके पृथ्वी रौंदता हुआ सरोवर पर आया।।7-1।।

(7-2)

राम-लक्ष्मण और भरत की केवली देशभूषण की वन्दना तथा त्रिलोकमण्डन हाथी के आहार-त्याग का प्रश्न-वर्णन

वह हाथी भरत को देखकर क्षण भर में उत्पन्न हुए जातिस्मरण से (शान्त) हो गया।।1।। उसके (हाथी के) शान्त होने पर वे भरत आत्मस्वरूप का स्मरण करके विनय पूर्वक सीता से भिड़ गये/तत्त्वचर्चा करने लगे।।2।। उन्होंने अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। उन्हें अनुरागपूर्वक नारायण-लक्ष्मण और बलभद्र राम दिखाई दिये।।3।। हाथी के जंजीर खम्भे से बाँधकर नारायण के बराबर स्थान पर जाकर बैठ गए।।4।। उसके द्वारा मिष्ठ वाणी से श्री राम से कहा गया–राजा के हाथी (त्रिलोकमण्डन) के द्वारा आहारदान जल छोड़ दिया गया है।।5।। उपवास करते हुए उसे तीन दिन हो गये हैं–ऐसा कहते हुए उन्होंने दुख प्रकट किया।।6।। उसी समय किन्हीं लोगों के द्वारा राम से कहा गया–जिससे चित्त में आनन्द प्रकट हुआ, (कि) आपके पुण्य से देशभूषण नाम के निष्कलंक केवली आये हैं।।7-8।। राम, भक्तिपूर्वक लक्ष्मण और भरत के साथ शीघ्र वन्दना के लिए वहाँ गये।।9।। केवली को नमस्कार करके धर्म श्रवण किया। इसके पश्चात् अवसर पाकर उन्होंने (राम ने) पूछा।।10।। स्वामी! हाथी के द्वारा सुख-निवारक आहार-जन त्याग किये जाने का क्या कारण है?।।11।।

घत्ता–राग-द्वेष रहित उन परम यतीश्वर ऋषि ने सभी को आशीर्वाद दिया। ऋषि के वहाँ उन्हें दो आज्ञाकारी सेवक दिखाई दिये।।7-2।।

(7-3)

सूर्योदय (त्रिलोकमण्डन हाथी) और चन्द्रोदय (भरत) का भवान्तर-वर्णन

(वे दोनों सेवक) मूर्ख सूर्योदय और चन्द्रोदय तप त्याग करके राज्यारूढ़ होते हैं/राज्य करते हैं।।1।। सूर्योदय के समय आर्त्तध्यान से मरकर स्त्री योनि की अनेक पर्यायों में भ्रमण करने के पश्चात् दोनों में (छोटा भाई) चन्द्रोदय कुरुजांगल (देश) के गजपुर (हस्तिनापुर) नगर के हरपति नामक (राजा) की हृदयहारिणी मनोहर श्री दामा नामा रानी के गर्भ से गुणों से युक्त जगत-प्रसिद्ध कुलंकर नाम से उत्पन्न हुआ।।2-5।। विश्वतास उस राजा का मंत्री और निर्मल-कान्ति-धारिणी अग्निकुण्डा उसकी स्त्री (थी)।।6।। सूर्योदय जो बड़ा भाई होता है, वह इन दोनों का मनोज्ञ पुत्र हुआ। वह मूर्ख श्रुति नाम से पुकारा गया। राजा चित्त से विरक्त होकर ऋषि हो गया।।7-8।। कुलंकर उस मूर्ख श्रुति के साथ संयुक्त रूप से राज्य करता है।।9।। एक दिन पीछे द्रोहिणी श्रीदामा (रानी) व्यभिचारियों में आसक्त देखी गई।।10।। जब तक दोनों को बैठाकर (श्रीदामा) उपशान्त करती है उसी समय वह व्यभिचारी को वहाँ से निकाल देती है।।11।। वे दोनों कुलंकर और श्रुति बहुत पर्यायों में भ्रमण करके तिर्यंचगति के दण्ड-स्वरूप निश्चित दुखों को पाने के पश्चात् उसकी परीक्षा के लिए राजगृही नगरी के एक ब्राह्मण के (पुत्र) हुए।।12-13।। बड़े (भाई) का नाम विनोद और छोटे (भाई) का नाम (माता-पिता ने) आशीर्वाद देते हुए रमन कहा।।14।।

घत्ता—छोटा भाई रमन विदेश गया। बहुत कष्ट से पढ़कर आया। वह नगर के बाहिर मठ में रुक गया। रात्रि में बड़े भाई विनोद की पत्नी वहाँ आई।।7-3।।

(7-4)

त्रिलोकमण्डन हाथी और भरत के भवान्तरों में विनोद और रमन तथा धनदत्त और भूषण पर्यायों का

वर्णन

पर-पुरुषों से रमण करने वह लम्पटी, दुष्टा, अनिष्ट, व्याभिचारियों में आसक्त वहाँ आई।।1।। उसका स्वामी/पति भी क्रोध में तलवार निकाल करके उसके पीछे लगकर वहाँ आया।।2।। उस व्याभिचारिणी ने पास में स्थित मुनि के पास यार को भेजकर कोई सोच विचार नहीं किया, उस पापिनी, स्वेच्छाचारिणी के द्वारा मन्दिर में फेंक कर मारी गई अपनी तलवार से वह विनोद मारा गया।।3-4।। इसके पश्चात् उसी विधि से उस दुष्टा ने रमन को भी मार डाला। संक्लेषित परिणामों से मरकर (विनोद और रमन) तिर्यंचगति में परिभ्रमण करने के पश्चात् वन में (रमन) हरिण और (विनोद) हरिणी हुए। इनमें हरिणी को क्षण भर में भील ने मार डाला।।5-6।। वह हरिण उस भील के द्वारा बांध करके घर ले जाया गया और उसका लालन-पालन किया गया।।7।। एक दिन संभूति राजा ने भील से इसे खूँटी सहित लेकर और देवपूजा भवन के पास बाँधकर उस रमण को प्रकाश-बोध युक्त किया।।8-9।। जिनेन्द्र पूजा की रुचि तथा भावपूर्वक मरकर वह स्वर्ग-भवन को प्राप्त/उत्पन्न हुआ।।10।। दूसरा बेचारा (विनोद भी) तिर्यंच योनि में भ्रमण करके धनिक वैश्य के रूप में उत्पन्न हुआ।।11।। वह देव (रमन का जीव) स्वर्ग से चय कर विनोद के जीव धनिक का भूषण नाम का धनवान पुत्र हुआ।।12।।

धत्ता–देव योनि में पूर्व भवों को देखकर वह भूषण-कुटुम्बियों के जाने बिना घर से शीघ्र चला गया। वन में जाते हुए उसके पैर में सर्प लग गया/सर्प ने डस लिया।।7-4।।

(7-5)

भूषण और उसके पिता धनदत्त की अभिराम और मृदुमति नाम से उत्पत्ति वर्णन

विषयों से विरक्त और उदासीन भूषण माहेन्द्र स्वर्ग में देव रूप

में उत्पन्न हुआ।।1।। पिता धनदत्त ने रौद्र तिर्यंचगति भँवर में डूबकर महा दुखकारी परिभ्रमण किया।।2।। भूषण का जीव देव अंगदत्ति (नामक राजा हुआ पश्चात् ज्ञान से भोगभूमि में उत्पन्न हुआ।।3।। इसके पश्चात् स्वर्ग में और तत्पश्चात् चक्रवर्ती का गुणों से युक्त अभिराम नाम के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ।।4।। वहाँ चार हजार राजाओं की पुत्रियों को विवाहने के (पश्चात्) मन में विरक्ति के भाव धारण करके (वह) दिन-रात अंतरंग की विशुद्धि के संबंध में विचारता है (और) घर में रहकर निष्काम होकर आत्म-ध्यान करता है।।5-6।। श्रावक के व्रत पालन करके पवित्र होकर वह ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।।7।। धनदत्त (भूषण वे पूर्वभव का पिता) भी योनियों में भव-योनियों में भव-भ्रमण करने के पश्चात् आकर झगड़ालू-विचारों का पोदनपुरी में मृदुमति (नाम का) ब्राह्मण पुत्र हुआ। वह पिता के द्वारा दुःखपूर्वक निकाल दिया गया।।8-9।। वह अनेक शास्त्रों को पढ़कर (घर) आया। पिता ने अपने (इस) पुत्र को कण्ठ से लगाया।।10।। रोते हुए माता ने पानी पिलाया। उसके द्वारा (मृदुमति के द्वारा) भी स्मरण किया जाकर और मन में जानकर अनुभव किया जाकर कहा गया।।11।। क्यों रोती हो? उत्तर में उसके द्वारा मृदुमति ने कहा गया–निश्चय से तेरे समान मेरा पुत्र था।।12।। निकाल दिए जाने से वह विदेश (भाग) गया है, इसी से मैं रोती हूँ। पथिक (मृदुमति) गहरी सांस लेता है।।13।।

घत्ता–तब उस मृदुमति के द्वारा उसे कहा गया–उदास न हो। तुम्हारा पुत्र (ही) यह मैं आया हूँ। तब उसके माता-पिता और स्वजन उसे देखकर सुखी हुए।।7-5।।

(7-6)

मृदुमति के तिर्यंचगति का बन्ध तथा अभिराम की भरत रूप में उत्पत्ति वर्णन

माता-पिता ने सम्पूर्ण गार्हस्थिक सम्पदा उसे सौंप दी और वह (मृदुमति) भी हताश होकर वेश्या में मग्न हो गया।।1।। घर का प्राप्त

सम्पूर्ण धन नाश करके उसकी चौर्य-प्रवृत्ति में वृद्धि हुई।।2।। धन्य-धान्य के निर्मित उस दुष्ट पापी ने चन्द्रपुरी-नगरी के राजमहल में प्रवेश किया।।3।। वहाँ वह चोर पट्टरानी के साथ प्रबद्ध राजा को (यह) कहते सुनता है।।4।। प्रिये! रति-सुख और परिग्रह त्याग करके मैं सुप्रभात ही तपश्चरण लिए लेता हूँ।।5।। रानी ने कहा–हे दीर्घबाहु! तब तो स्वामी के साथ ही मैं (भी) तप ग्रहण कर लेती हूँ।।6।। उसने (राजा और रानी से ऐसा) सुनकर चोर ने वहाँ राजा के साथ महाव्रत धारण करने का नियम किया।।7।। चोर ने उनके साथ सुप्रभात बेला में दीक्षा लेकर शिक्षाव्रतों का पालन किया।।8।। इसके पश्चात् कहीं से आकाशगामी वयोवृद्ध एक मुनि आये।।9।। (वे) योग धारण करके पर्वत के शिखर पर स्थित हो गये। नगर के लोग प्रतिदिन उनके दर्शन करते हैं।।10।। कोई इनके योग की पूजा करते और उनसे (कहते) हे यति! मेरे घर उतरकर भोजन करें/आहार लें।।11।। आकाशगामी वे चारण मुनि योग पूर्ण करके आँख की पलक झपकते ही चले गए।।12।। उसी समय मृदुमति ने वहाँ आकर चर्या (आहार) के लिए राजा की नगरी में प्रवेश किया।।13।। सभी लोगों ने–जो ऊँची देह वाले योग के पर्वत पर स्थित थे उन्हें जानकर इन्हें (मृदुमति को) आहार दिया।।14।। अज्ञानता वश लोगों के द्वारा वह पूजा गया और उसे दान देकर बार-बार संतुष्ट किया गया।।15।। सुख मानकर मौनपूर्वक स्थित हुए कर्म से उसके द्वारा तिर्यंचगति का बन्ध किया गया।।16।।

घत्ता–जिसके द्वारा माया की गई है वह मुनि ब्रह्म (ब्रह्मोत्तर) स्वर्ग गया। वहाँ दोनों भाई (सूर्योदय और चन्द्रोदय) मिल गए। अभिराम-स्वर्ग से च्युत होकर यहाँ भरत हुआ है। पृथिवी पर (उनका) अहर्निश यश रहे।।7-6।।

(7-7)

भरत-दीक्षा एवं सिद्ध पद-प्राप्ति तथा त्रिलोकमण्डन का अणुव्रत धारण

मृदुमति (मुनि) स्वर्ग से चयकर सफ़ेद शरीरवाला जगत्-भूषण/त्रिलोकमण्डन श्रेष्ठ हाथी के रूप में उत्पन्न हुआ।।1।। भरत के दर्शन से हुए जातिस्मरण लाभ से उसके द्वारा आहार जल छोड़ा गया है।।2।। उन देशभूषण मुनि से ऐसा सुनकर भरत के द्वारा मुनि को नमस्कार किया गया और निःशल्य होकर निराबाध दीक्षित हुआ।।3।। इसके पश्चात् अनेक राजाओं के द्वारा मोह-ममता (राजमोह) त्यागी गई। अधम कैकयी ने तप किया।।4।। सम्पूर्ण अणुव्रत राम के द्वारा लिए गए और हाथी को भी दिए गए तथा उसके द्वारा ग्रहण किए जाने पर उसके माथे पर तिलक लगाकर छोड़ दिया गया। वह कषाय-रहित होकर नगर में घूमता है।।5-6।। जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ लोग उसे लड्डू, पुआ का भोग (भोजन) देते हैं।।7।। प्रसिद्ध कुसुमांजलि व्रत को ज्ञात करके उसका पालन करने वालों में जो प्रसिद्ध हुए उनमें (यह) प्रसिद्ध हुआ।।8।। भरत भी तपश्चरण से केवलज्ञान प्राप्त कर अचल-स्थान (मोक्ष) में निरंजन-सिद्ध हुआ।।9।।

घत्ता—वह भूषण इस कुसुमांजलि पूजा से जब ऐसा सम्पदावान् हुआ, तब जो दूसरा कोई भी स्थिर मन से (यह पूजा करेगा) फिर उसके निश्चय क्या नहीं होता है।।7-7।।

यह सुनकर मगध-नरेश (श्रेणिक) को याद आया कि गोपाल (ग्वाला-अहीर) एकाग्र और स्थिर मन से जिनेन्द्र की इसी पूजा के करने से करकंडु नाम से उत्पन्न हुआ और संसार में विख्यात हुआ।।छ।।

(7-8)

जिनेन्द्र-पूजा के फलस्वरूप ग्वाल धनदत्त का करकंडु नृप होने का वृत्त वर्णन

इस जम्बूद्वीप के आर्यखण्ड में कुण्डल देश के पुरिमताल नामक नगर में राजनीतिज्ञ राजा नीलू के राज्य में वणिकपति वसुमित्र के द्वारा नाश को प्राप्त हुआ।।1-2।। उस वसुमित्र का ग्वाल धनदत्त नित्य वन

में भ्रमण करके पृथ्वी पर बैठ जाता है।।3।। एक दिन उसके द्वारा जलाशय में खिला हुआ एक सहस्त्रदल कमल देखा गया।।4।। उस श्वेत वर्ण के फूल को लेने के लिए उसके कहने पर उसे प्रकट होकर नाग-कन्या कहती है।।5।। सर्व हितकारी इन कमल को ले जाकर तुम किसी दूसरे को भली प्रकार प्रदान करो।।6।। उसने ऐसा सुनकर उसके द्वारा वन में वह (कमल)सेठ वसुमित्र को दिए जाने के पश्चात् क्षण भर का वृत्तान्त कहा गया।।7।। वणिकपति-वसुमित्र के द्वारा (वह वृत्त) राजा से कहा गया। पश्चात् राजा के द्वारा सुखपूर्वक मुनि का स्मरण किया गया।।8।। संयोग से राजा ग्वाले के साथ शीघ्र सहस्त्रकूट-जिनालय गया।।9।। जिनेन्द्र का अभिषेक और मुनि की वन्दना के पश्चात् मुनि से गुणवान् भव्य राजा के द्वारा पूछा गया।।10।। संसार में कौन सर्वोत्कृष्ट हैं? (उत्तर में) उन मुनि के द्वारा जिननाथ निरुपित किये गये/बताये गये।।11।। तब वह ग्वाल जिनेन्द्र भगवान के आगे होकर पृथ्वी पर सिर रखकर धारावाहिक रूप से कहता है।।12।। (उसने कहा-हे स्वामी!) निर्मल कमल सर्वोत्कृष्ट है, मैंने दिया है, ग्रहण करो।।13।।

घत्ता-इस प्रकार कहकर वह गुणवान ग्वाला देव के ऊपर (वह फूल) रखकर कार्यवश चला गया। वहाँ से मरकर जिनेन्द्र की पूजा भक्ति से राजा करकण्डु हुआ।।7-8।।

(7-9)

जिन-पूजा माहात्म्य तथा मुनि अमरसेन-वइरसेन का स्वर्गारोहण

स्त्री-पुरुष औरा राजा जो कोई भी हार्दिक भावनाओं सहित जिनेन्द्र की पूजा करता है, वह देव और मनुष्य पर्याय के सुख पाता है और इसके पश्चात् शिवपुर स्थान में सिद्ध होता है।।1-2।। ऐसा सुनकर मुनष्यों के राजा उस देवसेन के द्वारा आनन्दपूर्वक मुनि की वन्दना की गई।।3।। जिनेन्द्र पूजा की विधि समझकर क्षण भर में

राजा उत्साहपूर्वक अपने घर/महल गया।।4।। वहाँ भव्य जनों को संबोधनार्थ विहार करते हुए दोनों मुनिराज (अमरसेन-वइरसेन) आते हैं।।5।। वे भूमि-विहारी उन मुनियों ने भव्यजनों की सम्बोधित किया और जिननाथ का धर्म प्राप्त करने को प्रेरित किया।।6।। अति क्षीण काय वे मुनि अवधिज्ञान से (अपनी) आयु अल्प जानकर अपने आत्मस्वरूप का स्वाद लेते हैं।।7।। वे दोनों भाई (मुनि) माया रहित होकर पृथ्वी पर विहार करते हैं (और) काम मेटने वाली निरन्तर तप करते हैं।।8।। इसके पश्चात् मेरु पर्वत के समान अचल-धीरजवान तथा काम-बाण को नष्ट करने में शूर (वे दोनों मुनि) निःशल्य होकर पर्वत के शिखर हो जाते हैं।।9।। दशों धर्मों को अखण्ड रूप से जानकर और अपने चेतन-गुण का सम्मान करके/प्रधानता दे करके तथा कर्म की पाप-प्रकृतियों का संहार करके एवं कर्मों के आस्रव-कर्मागमन द्वार को बन्द करके आयु के रहते पाप-रूपी ग्रहों का अन्त करने वाले सन्यासपूर्वक मरकर मुनिश्रेष्ठ वीर अमरसेन-वइरसेन पाँचवें (ब्रह्म) स्वर्ग गये।।10-13।।

घत्ता–वहाँ (स्वर्ग) दोनों देवों का मनोज्ञ अप्सराएँ स्वाभाविक आभूषण से शृंगार करती हैं। वे घंटियों की ध्वनि वाले दिव्यविमान पर चढ़कर तीनों लोक की जिन-प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।7-9।।

(7-10)

अमरसेन-वइरसेन को सिद्ध पद प्राप्ति, कवि की आचार्य परम्परा तथा ग्रन्थ रचना कराने वाले श्रावक का उल्लेख

दोनों राजा (मनुष्य गति से) शुभ कर्मों से देव गति जावेंगे। देवों के सुखों को भोगने के पश्चात् दोनों भाई वहाँ से (नर पर्याय में होकर/आकर) सिद्ध होंगे।।1-2।। पश्चात् तप बल से दोष रहित होकर अर्हन्त के समान अद्वितीय शुभगति पाते हैं।।3।। ऐसा जानकर

भव्यजनों को दान दो, अर्हन्त-जिनेन्द्र और आगम में श्रद्धा करो।।4।। यह मूल रूप से जिनेन्द्र महावीर के द्वारा कहा गया और गौतम के द्वारा मुनि सुधर्माचार्य से कहा गया।।5।। इसके पश्चात् (सुधर्म मुनि के द्वारा) केवली जम्बूस्वामी को प्रकाशित किया गया। उन्होंने नन्दिमित्र से और नन्दिमित्र ने अपराजित मुनि से कहा।।6।। अपराजित ने गोवर्द्धन मुनि से और गोवर्द्धन मुनि ने भद्र से तथा भद्र ने भद्रबाहु मुनि ने कहा।।7।। आचार्य-परम्परा से जिन्होंने दोहन किया उनमें सूरि जिनचन्द्र श्रेष्ठ हैं।।8।। उनके सूत्र-ग्रन्थ देखकर कवि-मणि माणिक्क ने ललित अक्षरों और सुन्दर वाणी से यह रचना की।।9।। महणा के पुत्र देवराज की विनय से उपदेशपूर्वक यह प्रकाशित किय गया।।10।। जब तक इस पृथ्वी पर सार स्वरूप सूर्य और चन्द्र हैं, पत्नी के साथ वह महणा का पुत्र (देवराज) आनन्दित रहे।।11।। शास्त्र के सार (मर्म) और अर्थ के जानकर विद्वान् लोगों को पढ़ावें।।12।।

घत्ता—धरा-धन-धान्य से तृप्त रहे, समय पर मेघ वर्षा करें, कामिनीजन (स्त्रियों) नाचें, नवों रस झरें और लोक सभी को शरणदायी होवे।।7-10।।

(7-11)

कृतिकार-कामना

सार स्वरूप जिनेन्द्र का श्रेष्ठ शासन कुमार्ग-विदारक जिनवाणी आनन्द देवें।।1।। विद्वान् समय और परिस्थिति के अनुसार सज्जन जलवृष्टि के समान आनन्द देवें।।2।। राजा-प्रजा की रक्षा करते हुए और लोगों को न्यायमार्ग दर्शाते हुए आनन्द देवें।।3।। शान्ति होवे, पुष्टि होवे, तृष्टि होवे और पापों का विनाश होवे।।4।। श्रेणिक नरक-निवास से बाहर निकले और संसार में रहकर जैन का प्रचार-प्रसार करें।।5।। जिससे मत्सर-मोह दूर होते हैं वह शुभ ध्यान नियमपूर्वक धारण करो।।6।। वरिष्ठ आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य-तप-तेज से महान् मुनि श्रेष्ठ पद्मनन्दि, उनके पृथ्वी पर श्रेष्ठ शिष्य देवनन्दि,

राग-द्वेष, मोह-माया को नष्ट करने वाले ग्यारह प्रतिमाधारी और शुभध्यान में उपशम-भावों को भाने वाले तथा काम की लोलुपता में शान्त-परिणामी सुखी रहें।।7-10।। वहाँ जिनालय के पास एक सुन्दर घर में गौर वर्ण के दो पण्डित रहते हैं।।11।। (उनमें) बड़ा जसमलु गुणों का भण्डार तथा दूसरा छोटा भाई तत्त्वों का जानकार है।।12।। ग्रंथों के अर्थ का ज्ञाता, श्री पार्श्वनाथ की पूजा करने वाला वह निरभिमानी (छोटा भाई) शान्तिदास आनन्दित रहे। इसके पश्चात् जिसका यश कहा गया है वह देवराज स्त्री, पुत्र और पौत्र सहित आनन्दित रहें।।13-14।।

घत्ता—रोहतक नगर के सभी निवासी आनन्दित रहें। पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरणों की शरण में नाना स्तुतियों से वन्दना करें।।7-11।।

(7-12)

ग्रंथ रचना प्रेरक देवराज का वंश परिचय

इसके पश्चात् दातार (देवराज के वंश) की संक्षेप से श्रेष्ठ नामावलि कहता हूँ।।1।। सुप्रसिद्ध अग्रवाल (जाति) अन्वय और सिंघल गोत्र के सज्जनों को संक्षेप से कहता हूँ।।2।। अपने तेज से जिनके द्वारा कुल सन्तति लाई गई/चलाई गई वे वूल्हाणि नाम से कहे गए।।3।। (इस सन्तति में) गुणाकर चौधरी करमचंद की मनोहर भार्या दिउचंदही के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। वे ऐसे लगते थे मानों तीनों पाण्डव (युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन) ही यहाँ आये हों।।4-5।। पहला शास्त्रों के अर्थ रूपी रस का प्रेमी महणा धरती पर ऐसे उदित हुआ मानों चन्द्रमा का उदय हुआ हो।।6।। उसकी प्रेमाही नाम की भार्या से मनोहर चार पुत्र उत्पन्न हुए।।7।। चन्द्र सम निर्मल यश और चारित्रधारी, इन्द्रिय-जयी, दूसरों के अशुभ (दुःख) को दूर करने वाला, पर-स्त्रियों और विद्वानों द्वारा जो असत्य कहा गया है उससे विरक्त, चारों में सौम्य और ज्येष्ठ देवराज महल में नौनाही पत्नी के साथ भली प्रकार से रमण करता है।।8-10।। उसकी कुक्षि रूपी सीप

से मुक्ताफल रूपी शत्रुओं को शल्य स्वरूप दो पुत्र उत्पन्न हुए।।11।। हरिवंश नाम का पहला (पुत्र) अपने कुल का और गुणी जनों का दीपक हुआ।।12।।

घत्ता–गुणों से मनोज्ञ उसकी भार्या मेल्हाड़ी कही गई है। उसकी किससे उपमा करें। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो गौरी, गंगा और यमुना ही हो।।7-12।।

(7-13)

देवराज के द्वितीय पुत्र एवं अन्य भाइयों का परिचय

प्राणियों को अभयदान देने वाले उस हरिवंश के साक्षी स्वरूप पहले अभयचन्द और दूसरा गुणरूपी रत्नों से स्वरूप, देवराज के सभी पुत्रों में सूर्य-स्वरूप रत्नपाल नाम का पुत्र कहा गया है, उसकी पत्नी भूराही गाई गई है।।1-3।। देवराज का जगत-विख्यात झाझू भाई हुआ।।4।। चोचाही उसकी भार्या कही गई जो उसके स्नेह से सुशोभित रहती है।।5।। नागराज उसका पहला पुत्र और उसकी सूवटही नाम की स्त्री संतति जनने से आल्हाद कारिणी थी।।6।। दूसरा गेल्हू और झाझू का तीसरा पुत्र चाऊ नाम से लोगों में विख्यात हुआ। चुगना-महणा का (तीसरा) प्रिय पुत्र कहा गया है।।7-8।। उसकी डूँगरही श्रेष्ठ पत्नी ओर दोनों के खेतसिंह, श्रीपाल, राजमल, कुँवरपाल और जटिल नामक पुत्र कहे हैं।।9-10।। महणा का चौथा पुत्र जो धर्म का रथ (कहा गया) छुटमल्लु (था)। मनोहरारी फेराही स्त्री से उत्साही श्रेष्ठ दरगहमल्लु पुत्र (हुआ)।।11-12।।

घत्ता–इसके पश्चात् करमचन्द का दूसरा पुत्र जोजू कहा गया है। ऊपर कहे गए जोजू की गुरु के पदों में अनुरक्ता साहाही प्रिया जानी गई है।।7-13।।

(7-14)

करमचंद के द्वितीय पुत्र जोजू का कौटुम्बिक परिचय एवं तीसरे पुत्र और पुत्रवधु का नामोल्लेख-वर्णन

जोजू और साहाही दोनों के आन्तरिक योग से विश्व-श्रुत

(विख्यात) पवनंजय और अर्जुन के समान तीन पुत्र हुए।।1।। प्रथम (पुत्र) रौरावण (था)। उसकी अधिक प्रिय रामही पत्नी हुई।।2।। उसके शरीर गर्भ से चार पुत्र उत्पन्न हुए। सुरूपवान् पृथ्वीमल पहला था।।3।। बहु स्नेह से अलंकृत (स्नेहवान), सुख करने वाली (देने वाली) कुलचन्दही उसकी भार्या हुई।।4।। उसकी कुक्षि-कूँख (गर्भ) से नय स्वर्ग के समान सुरूपवान् (और) गद्गद् (आनन्दित) कर देने वाली वाणी बोलने वाला कीर्तिसिंह उत्पन्न हुआ।।5।। इसके पश्चात् चन्द्रमा के समान निर्मल यशवाला चन्दु (और) अनुरंजन करने वाली लूनाही (उसकी) प्रियतमा कही गई है।।6।। उसका शुभ्र-शुभ लक्षणों से अलंकृत, जिसने पापियों को भी सुख दिया (ऐसा) मदनसिंह पुत्र (हुआ)।।7।। वीणा-वादकों में श्रेष्ठ वीणाकंठ अन्य (तीसरे पुत्र हुए) मन को हरने वाली पोपाही उसकी कामिनी (पत्नी) नरसिंह उनका ज्येष्ठ तथा पिल्लू (कनिष्ठ) पुत्र लक्ष्मी के समान (दोनों) माता-पिता को प्रिय थे।।8-9।। इसके पश्चात् सौन्दर्य से मकरध्वज-कामदेव के समान लाडनु (चौथा पुत्र) (और) उसकी यशधारिणी बीवी पत्नी (कही गई है)।।19।। इसके पश्चात् जोजा (जोजू) का अपने रूप सौन्दर्य से जिसके द्वारा कामदेव जीत लिया गया, सारू (नाम का) दूसरा पुत्र (और उसे) अनुरंजित करने वाली दोदाही जिसके द्वारा शुभ-मरण किया जाने से स्वर्ग में जाया गया/स्वर्ग प्राप्त किया गया, पत्नी (कही है)।।11-12।। जोजा (जोजू) का अन्य तीसरा-पण्डितों के लिए हार स्वरूप लक्ष्मण नाम का श्रेष्ठ पुत्र, मल्लाही स्त्री और उसका लोगों को आनन्दित करने वाला हीरू नाम का पुत्र (कहा गया है)।।13-14।।

घत्ता–(कमरचन्द के) तीसरे पुत्र का नाम ताल्हु कहा गया है। (उसकी) मनोहारिणी (स्त्री) वाल्हाही के दो पुत्र (हुए) उन्हें संक्षेप में कहता हूँ।।7-14।।

(7-15)

करमचंद के तीसरे पुत्र ताल्हु का वंश-परिचय तथा कवि की काव्यात्मक-भावना एवं रचना काल

कमल की कान्ति धारण करने वाला सुखकारी पहला (पुत्र) दामू सुखकारिणी ईच्छाही (उसकी) पत्नी (हुई)।।1।। इन दोनों के महदास प्यारा पुत्र हुआ। इसके पश्चात् मनोहर वीर देवदास हुआ।।2।। (इसकी)रुधारणंही मनोहर स्त्री (और उससे) सुखकारी घणमलु पुत्र हुआ।।3।। उसकी जगमल्लाही श्रेष्ठ पत्नी और भरण-पोषण करने वाला वायमल्ल पुत्र हुआ।।4।। इस प्रकार रसों से भरपूर शास्त्र की रचना कराने वाले देवराज का वंश प्रकाशित किया।।5।। क्रोध-मोह, माया और मान के विदारक (इस ग्रंथ के) जो अक्षर हैं कोई भी उन्हें नहीं नाशे।।6।। विरुद्ध भी कहा गया हो तो वीर जिनेन्द्र के मुँह से निकसित श्रेष्ठ वह स्वामिनी सरस्वती प्रसन्नता पूर्वक मुझे क्षमा करें।।7-8।। विशेष रूप से ब्रह्मचर्य आदि गुण-समूह-निधिधारी आचार्य हेमचन्द्र और पद्मनन्दि से मेरे द्वारा (मुझ माणिक्क कवि के द्वारा) कसौटी पर कसकर वर्णधारण किये जाने के पश्चात् काव्य में स्वर्णाक्षरों अथवा सुन्दर लिपि में लिखकर दिया गया है।।9-10।। मात्रा और अर्थ-सौंदर्य का क्षय किये बिना अर्थविरुद्ध मलिनता को काटकर मन लगाये बिना भी यह काव्यरूपी रसायन चिरकाल तक शोभित होवे।।11-12।। राजा विक्रमादित्य को हुए पन्द्रह सौ छिहत्तर वर्ष निकल जाने पर चैत मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि शनिवार के दिन कृतिका नक्षत्र के शुभ योग में (यह) सूत्र (अमरसेणचरिउ) पूर्ण (समाप्त) हुआ।।12-15।।

घत्ता–(कवि भगवान् महावीर से विनय करते हुए कहते हैं) हे जगत् के परमेश्वर, जिनेन्द्र भगवान महावीर, मुझे शीघ्र इतना ही दे दीजिए जहाँ क्रोध है और न मान है, जहाँ जाने पर पुनः संसार में आना नहीं पड़ता, वह शाश्वतपद (मोक्ष) मुझे दीजिए।।7-15।।

इस प्रकार चारों वर्ग की सुन्दर कथारूपी अमृतरस से परिपूर्ण, श्री पण्डित माणिक्क द्वारा साधु महणा के चौधरी देवराज नाम वाले पुत्र के लिए रचे गए इस महाराज श्री अमरसेन चरित्र में अमरसेन-वइरसेन की स्वर्ग प्राप्ति का वर्णन करने वाला यह सातवाँ परिच्छेद पूर्ण हुआ।।छ।।

ज्ञान-दान से ज्ञानवान्, अभयदान से निर्भयत्व, अन्नदान से नित्य सुख और औषधिदान से व्याधि-विहीनता प्राप्त होती है।

पुस्तक का आत्म निवेदन है कि तैल, जल और शिथिल-बन्धन से मेरी रक्षा करें। मुझे मूर्ख के हाथ में नहीं देना चाहिए।

।।शुभं-भवतु।।

हिन्दी अनुवाद

श्री राजा विक्रमादित्य के (1576) वर्ष व्यतीत हो जाने पर संवत् 1577 वर्ष में कार्तिक वदी पंचमी रविवार के दिन कुरुजांगल देश के सोनीपत शुभ स्थान में काष्ठासंघ-माथुरान्वय में पुष्कर-गण में (हुए) भट्टाधर श्री गुणकीर्तिदेव के पट्टधर भट्टारक श्री यशकीर्तिदेव तथा इनके पट्टधर मलयकीर्तिदेव के पट्ट पर (विराजमान) हुए भट्टारक गुणभद्र सूरिदेव की आम्नाय में अग्रवाल अन्वय के गोयल गोत्र में सोनीपत के निवासी ने जिनेन्द्र की इन्द्रध्वज पूजा की। शाह छल्हू और उसकी शीलरूपी जल से युक्त नदी तुल्य साध्वी करमचंदही के विद्वान् पुत्र बाढू ने चार प्रकार का दान दिया। उसके द्वारा ज्ञानावरणी कर्म के क्षय हेतु यह अमरसेन चरित लिखाया (था) वह कार्य शुभकारी हो, मंगल देवे।।छ।।

रक्षाबन्धन पर्व-दिवसे समाप्तमिदं कार्यं

6-8-1990 सोमवार